स्वामी रामतीर्थ

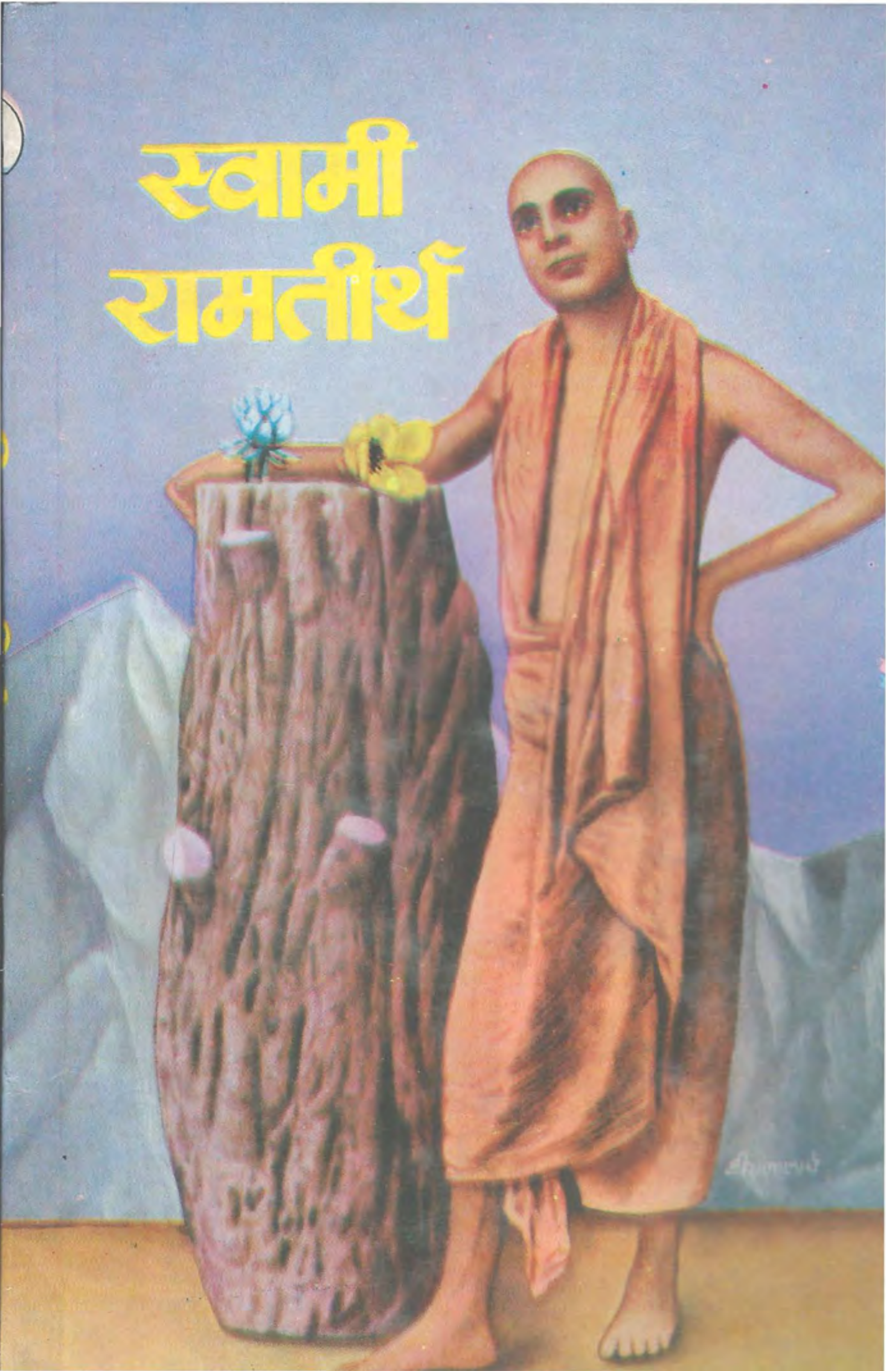

स्वामी रामतीर्थ

स्वामी रामतीर्थ

लेखक
सन्तराम वत्स्य

सुबोध पब्लिकेशन्स

© सुबोध पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली

प्रकाशक : **सुबोध पब्लिकेशंन्स,** २/३ बी, अंसारी रोड, नयी दिल्ली ११०००२ / संस्करण १९८५ / मुद्रक : अजय प्रिण्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

मूल्य : 30.00/-

दो शब्द

स्वामी रामतीर्थ रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द की उज्ज्वल परम्परा के संन्यासी थे। स्वामी विवेकानन्द के साथ तो उनका सम्पर्क भी हुआ था और दोनों एक-दूसरे से प्रभावित भी हुए थे।

आचार्य शंकर ने प्रस्थानत्रयी द्वारा जिस वेदान्त-वेद्य तत्त्व का प्रतिपादन किया था। स्वामी राम भी उसी पथ के अनुयायी और अन्वेषक थे। जिस प्रकार भगवतपाद आचार्य शंकर का ज्ञान भक्ति-रस से भावित था, ठीक वैसे ही स्वामी राम भी ज्ञानी भक्त थे। 'ज्ञानहिं भक्तिहिं नहीं कछु भेदा' को उन्होंने अपने जीवन में प्रत्यक्ष किया।

वे कवि, मनीषी और आधुनिक युग के सन्त थे। अरण्य-संवाद नामक उनकी रचनाएं इस युग के आरण्यक ही तो हैं।

स्वामी राम का समग्र जीवन आत्म-साक्षात्कार का तथा 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों का निदर्शन रहा है। वे मूर्तिमन्त वेदान्त थे। 'ओ३म्' उनके श्वास-प्रश्वास में ओतप्रोत था।

वे शिशु जैसे सरल, पुष्प जैसे प्रसन्न, सागर जैसे गंभीर और हिमालय जैसे उच्च थे। वे जहां भी गए, वहीं आनन्दामृत की वर्षा होने लगी। वे चिदानन्दस्वरूप शिव थे। उनके सामने जड़ भी चेतन का चोला पहन लेता था। उनकी भक्ति ज्ञान-वैराग्य से सम्पन्न थी। उस लीलामय की लीला को वे कण-कण में अपनी दिव्य दृष्टि से प्रत्यक्ष देखते थे।

उनके दृष्टि-विक्षेप मात्र से, उनकी ध्वनि के श्रवण-मात्र से, उनके आशीष में उठे हस्त के स्पर्श से श्रद्धालुओं के जीवन में दिव्य भाव का अवतरण हो जाता था।

वास्तविकता यह है कि उन जैसे दिव्य भावापन्न परमहंसों के जीवन की थाह पाना अत्यन्त कठिन है। फिर भी उनके गुणकथन से हम अपनी ही वाणी को पवित्र करने का प्रयत्न करते हैं।

—**लेखक**

क्रम

बचपन और प्रारम्भिक शिक्षा	६
हाई स्कूल में	११
कालेज में	१४
प्राध्यापन-कार्य	३४
संन्यास	५०
स्वामी राम जापान में	६७
स्वामी रामतीर्थ अमेरिका में	७३
फिर स्वदेश में	८८
व्यास आश्रम में	६५
वसिष्ठ आश्रम में	१००
विदा !	१०५

स्वामी रामतीर्थ

बचपन और प्रारम्भिक शिक्षा

तीर्थराम गोस्वामी का जन्म कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा, बुधवार, विक्रमाब्द १९३०, तदनुसार २२ अक्तूबर, १८७३ ई० को हुआ था।

उनका जन्मस्थान मुरालीवाला गांव, जिला गुजरां वाला है, जो अब पाकिस्तान में है।

उनके पिता श्री हीरानन्द गोस्वामी निर्धन ब्राह्मण थे और पुरोहिताई से परिवार को पालते थे। वे मूलतः स्वात (चित्राल) के निवासी थे। यह स्थान अविभाजित भारत के सीमाप्रान्त में था, जो अब पाकिस्तान में है। इस कुल के कुछ परिवार अपने मूल स्थान को छोड़कर मुरालीवाला में आ बसे थे और अब भी स्वात स्थित अपने यजमानों के पास आते-जाते थे।

गोस्वामी हीरानन्द के पिता गोस्वामी रामचन्द्र, ज्योतिष के अच्छे विद्वान् थे। पौत्र के जन्म पर उन्होंने स्वयं जन्मलग्न बनाया और जब ग्रह-स्थिति पर विचार किया तो रोने लगे। पूछने पर उन्होंने बताया कि या तो नवजात शिशु नहीं जिएगा, या उसकी मां की मृत्यु हो जाएगी और यदि जातक जीवित रहा तो बड़ा विद्वान्, यशस्वी और धार्मिक जगत् का नेता बनेगा।

यह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। बालक को जन्मे अभी एक वर्ष भी नहीं हुआ था कि उसकी माता का देहान्त हो गया।

अब तीर्थराम का पालन-पोषण कैसे हो, इस पर विचार करके गोस्वामी हीरानन्द ने अपनी बहन धर्मकौर को उसकी ससुराल जंडियाला से अपने पास बुला लिया। तीर्थराम का बड़ा भाई गुरुदास भी तीर्थराम का विशेष ध्यान रखता। तीर्थराम से केवल एक वर्ष बड़ी एक बहन भी थी। उसका नाम था तीर्थदेवी।

तीर्थराम की बुआ धर्मकौर बड़ी धर्म-परायण महिला थीं। वे प्रतिदिन मन्दिर जातीं और सत्संग, कथा-कीर्तन में भाग लेतीं। वे जहां भी जातीं तीर्थराम को सदा अपने साथ गोदी में लिए रहतीं। शिशु तीर्थराम भी कथा-कीर्तन में शान्तभाव से गोदी में बैठा रहता।

पुरानी परम्पराओं से बंधे हुए, रूढ़िवादी पिता हीरानन्द ने दो वर्ष के शिशु तीर्थराम की सगाई पं० रामचन्द्र की बेटी से कर दी। पं० रामचन्द्र गुजरांवाला जिले की वजीराबाद तहसील के, वैरोके ग्राम के निवासी थे। पं० रामचन्द्र के पिता श्री मुसद्दीलाल महाराजा रणजीतसिंह के दीवान रहे थे, इससे परिवार का बड़ा मान था। उधर गोस्वामीजी ब्राह्मणों में सम्मानित ब्राह्मण माने जाते हैं, इसलिए दोनों परिवारों ने एक-दूसरे के साथ सम्बन्ध जोड़कर अपने को गौरवान्वित समझा।

पं० हीरानन्द ने देखा कि इस तरह गृहस्थी की गाड़ी नहीं चलेगी। बहन धर्मकौर भी कब तक मायके में रहतीं। छोटे बच्चे की देखरेख और गृहस्थी की व्यवस्था के लिए उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया। उनका दूसरा विवाह गुजरांवाला नगर में हुआ। उनके ससुर थे पं० नानकचन्द।

तीर्थराम की प्रारंभिक शिक्षा मुरालीवाला गांव की पाठशाला में हुई। इस पाठशाला के मुख्याध्यापक थे मौलवी मुहम्मद अली।

तीर्थराम पढ़ने-लिखने में बड़ा तेज था, इसलिए मौलवी मुहम्मद अली का उसके साथ बड़ा स्नेह था। तीर्थराम ने प्राथमिक पाठशाला की पांच वर्ष की पढ़ाई तीन वर्ष में पूरी कर ली और परीक्षा में ऊंचे अंक लेकर छात्रवृत्ति भी प्राप्त की।

पुत्र की सफलता से प्रसन्न होकर पं० हीरानन्द ने मौलवी जी को दक्षिणा-स्वरूप दो रुपये देने जब तीर्थराम को भेजा तो उन्होंने कहा, "मैं दो रुपये नहीं, दुधारु गाय लूंगा।" गुरुभक्त तीर्थराम ने पिता से कहकर मौलवीजी को दुधारु गाय दिलवा दी।

० ० ०

तीर्थराम को बचपन में न मां का प्यार मिला और न दूध। पं० हीरानन्द की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि बालक के लिए कुछ अतिरिक्त व्यवस्था कर सकते। इस कुपोषण के कारण तीर्थराम का स्वास्थ्य ढीला

ही रहा और इसका प्रभाव जीवन भर बना रहा। दस वर्ष की अवस्था में तीर्थराम का विवाह भी हो गया। ग्रामीण अशिक्षित और रूढ़िग्रस्त समाज में दस वर्ष की अवस्था में बालक-बालिका का विवाह हो जाना उस समय साधारण बात थी। इस बात पर कोई विचार नहीं करता था कि गुड्डे-गुड्डियों के विवाह-जैसे इन विवाहों की क्या आवश्यकता थी। विवाह-सूत्र में बंधने वाले वर-वधू विवाह के अर्थ को भी नहीं जानते थे।

ये थीं वे बचपन की परिस्थितियाँ जिनमें से होकर बालक तीर्थराम निकल रहा था।

हाईस्कूल में

गांव की प्राथमिक पाठशाला की पढ़ाई समाप्त हुई। आगे की पढ़ाई गुजरांवाला में हो सकती थी क्योंकि उससे निकट और कोई हाईस्कूल नहीं था।

गुजरांवाला मुरालीवाला से छः मील दूर था और प्रतिदिन छः मील जाना और आना दस वर्ष के तीर्थराम के लिए कठिन था। इस कठिनाई को ध्यान में रखकर तीर्थराम के रहने की व्यवस्था गुजरांवाला में उसकी सौतेली मां के मायके में कर दी गई।

गुजरांवाला में पढ़ते हुए ही भगत धन्नामल से तीर्थराम का परिचय हुआ और भगत धन्नामल के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर तीर्थराम उनको अपना गुरु मानने लगा।

भगत धन्नामल यद्यपि जाति के कंसेरे (बर्तन बनाने वाले) थे, किन्तु समाज में उनका बड़ा मान था। वे यद्यपि साधारण पढ़े-लिखे ही थे, तथापि उनकी गणना एक अच्छे ईश्वर-भक्त के रूप में होती थी।

भगत धन्नामल ने विवाह नहीं करवाया था। वे आजीवन ब्रह्मचारी रहे। वे शरीर से हृष्ट-पुष्ट थे और आस-पास के इलाके में पहलवान के

रूप में प्रसिद्ध थे। लोग उन्हें भक्त और ज्ञानी मानकर उनका आदर-सम्मान करते थे।

वे पहलवानी के लिए विभिन्न नगरों-कस्बों में बुलाए जाते थे। कहते हैं, इसी तरह की एक यात्रा में किन्हीं महात्मा से उनका सत्संग हो गया। उन महात्मा ने भगत धन्नामल को योग की दीक्षा दी थी।

पूज्यपाद महात्मा से योग की दीक्षा मिलने के बाद जब भगत धन्नामल ध्यानमग्न हुए तो चार घंटों तक उनकी समाधि लगी रही।

इस दीक्षा के बाद भगत धन्नामल को वह अन्तर्दृष्टि प्राप्त हुई जिससे मनुष्य अपने अन्तर्यामी को सर्वत्र देखने में समर्थ होता है। यह अन्तर्दृष्टि प्राप्त होने के पश्चात् भगत धन्नामल वेदान्त के महान् ग्रन्थ योगवासिष्ठ का मनन करने लगे और उसमें उनकी गहरी पैठ हो गई। यही नहीं, उनमें ऐसी आध्यात्मिक शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ कि जिसके कारण वे दूसरों के मन की बात को जान सकते थे, किन्तु बाद में उनकी यह शक्ति समाप्त हो गई।

इन्हीं भगत धन्नामल की देख-रेख में तीर्थराम का आध्यात्मिक जीवन प्रारम्भ हुआ।

० ० ०

मन्दिर में पूजा के समय शंख और घंटा-ध्वनि को सुनकर बालक तीर्थराम पुलकित हो उठता। उसका अन्तस् नाद-ब्रह्म से झंकृत हो उठता। वह शरीर से चाहे सदा आरती में उपस्थित न रह पाता हो, पर आरती के शंख और घंटे की ध्वनि सुनकर उसका मन अन्तर्यामी के चरणों में लोट-लोट जाता।

धीरे-धीरे तीर्थराम की श्रद्धा-भक्ति भगत धन्नामल के प्रति बढ़ती गई यह सन्बन्ध गुरु-शिष्य के रूप में सुनिश्चित हो गया और तीर्थराम ने अपने को गुरु के लिए समर्पित-सा कर दिया।

यही कारण है कि तीर्थराम के कालेज में पढ़ने लाहौर चले जाने अध्यापक बन जाने और गृह-त्याग के बाद भी यह सम्बन्ध बना रहा।

तीर्थराम के लिए भगत धन्नामल भारतीय परम्परा के उन गुरुओं के समान थे जिन्हें ईश्वर तुल्य ही नहीं अपितु ईश्वर ही या ईश्वर से भी कुछ

अधिक माना जाता है। कारण स्पष्ट है। ईश्वर-साक्षात्कार गुरुकृपा से ही संभव होता है, इसलिए गुरु का पद और भी महत्त्वपूर्ण है।

कबीरजी ने ठीक ही कहा है :

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दियो मिलाय।।

इन भगत धन्नामल के प्रति तीर्थराम की श्रद्धा दोपहर बाद की छाया की तरह बढ़ती गई, बढ़ती ही गई।

o o o

वास्तविकता यह है कि यदि तीर्थराम ने प्राथमिक पाठशाला की परीक्षा में विशेष योग्यता दिखाकर छात्रवृत्ति न ली होती तो संभवत: पं० हीरानन्द उसे पढ़ाने गुजरांवाला न भेजते किन्तु इस छोटी उमर में क्योंकि तीर्थराम कुछ कमा नहीं सकता था और छात्रवृत्ति लेकर उसने आगे शिक्षा जारी रखने का औचित्य सिद्ध कर दिया था, इसलिए उसे पढ़ाना एक तरह से आवश्यक था।

तीर्थराम ने गुजरांवाला से हाईस्कूल की परीक्षा बहुत अच्छे अंक लेकर उत्तीर्ण कर ली। योग्यताक्रम में पंजाब भर में तीर्थराम ने अड़तीसवां स्थान प्राप्त किया। उर्दू और फारसी में भी तीर्थराम ने विशेष रुचि दिखाई। शेख सादी की प्रसिद्ध रचनाएं 'गुलिस्तां' और 'बोस्तां' उसे खूब याद थीं।

पं० हीरानन्द चाहते थे कि अब तीर्थराम कोई नौकरी कर ले और गृहस्थी को चलाने में उनकी सहायता करे परन्तु तीर्थराम आगे पढ़ना चाहता था। जब पिता के मना करने पर भी तीर्थराम ने अपने गुरु भगत धन्नामल की स्वीकृति और आशीर्वाद लेकर लाहौर जाकर कालेज में पढ़ने का निश्चय कर लिया तो पिता ने क्रुद्ध होकर स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि वह तीर्थराम को कालेज की पढ़ाई का खर्च नहीं दे सकता। इतना ही नहीं, उन्होंने तीर्थराम को अपनी किशोरी पत्नी को भी साथ रखने और उसका भरण-पोषण करने के लिए कहा। विवश होकर तीर्थराम को कुछ समय के लिए पत्नी को लाहौर में अपने साथ रखना भी पड़ा। बाद में पिता का क्रोध शान्त होने पर उन्होंने पुत्रवधू को गांव बुला लिया।

पिता-पुत्र के इस संघर्ष में सौभाग्य से तीर्थराम की सौतेली मां के बहनोई, तीर्थराम के मौसा डा० रघुनाथमल जी ने जो सहायक सर्जन थे, तीर्थराम को आर्थिक और नैतिक समर्थन प्रदान किया।

इन कठिन परिस्थितियों में तीर्थराम ने ज्ञान की भूख और दृढ़ संकल्प-शक्ति के बल पर न केवल अपनी कालेज की पढ़ाई चालू रखी अपितु बड़े सम्मान के साथ परीक्षा उत्तीर्ण की।

लाहौर में कालेज की शिक्षा के दिनों में तीर्थराम के जीवन की छोटी-बड़ी बातों के बारे में हमें प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध है। इस जानकारी का स्रोत वे पत्र हैं जो तीर्थराम ने गुजरांवाला स्थित अपने गुरु भगत धन्नामल को लिखे थे। वह सप्ताह में दो-तीन पत्र भगत धन्नामल को लिखता था और उनमें अपनी समस्त गतिविधियों का उल्लेख करता था।

इस प्रकार बाद में तीर्थराम के लगभग एक हज़ार पत्र धन्नामलजी के पास सुरक्षित मिले थे।

इन पत्रों के अतिरिक्त, तीर्थराम अपनी नोटबुक में भी बहुत कुछ लिखता रहता था।

कालेज में

मई १८८८ ई० में तीर्थराम ने फोरमैन क्रिश्चियन कालेज लाहौर में एफ० ए० में प्रवेश ले लिया। तीर्थराम को आशा थी कि उसे छात्रवृत्ति मिल जाएगी, पर वह नहीं मिली।

तीर्थराम ने लाहौर में बच्छो वाली मुहल्ले में एक रुपया मासिक किराये पर एक कमरा ले लिया। कालेज की फीस, पुस्तकों, रोटी-कपड़े और जेब खर्च को मिलाकर कोई तीस रुपए मासिक की तीर्थराम को आवश्यकता थी, किन्तु कहीं से भी रुपए मिल सकने की संभावना नहीं थी। घर की स्थिति पहले ही खराब थी और गोस्वामी हीरानन्द की इच्छा के

विरुद्ध तीर्थराम ने कालेज में पढ़ने का निश्चय किया था, फिर भी पिता ने यथासंभव सहायता की ही। तीर्थराम की आवश्यकता इतनी कम थी कि वह अपने-आप पर कुछ भी खर्च नहीं करता था। इसमें परिस्थितियों की बाध्यता और सादा जीवन बिताने की वृत्ति दोनों ही कारण थे। हां, तीर्थराम को प्रत्येक पंजाबी की तरह दूध पीने का विशेष शौक था। पर यह शौक भी कहाँ पूरा हो पाता था ! हां, बाद में कालेज की पढ़ाई के दिनों में एक और खर्चीला व्यसन तीर्थराम को लगा। यह था अच्छी-अच्छी पुस्तकें खरीदकर पढ़ने और उनका संग्रह करने का। पुस्तकों के लिए उधार लेना और दो समय की रूखी रोटी के खर्च को भी कम करना तीर्थराम को स्वीकार था। कहा जाता है कि तीर्थराम के हाथ तंग होने का एक कारण यह भी था कि वह हाथ में पैसा आते ही पुस्तकें खरीदने से अपने को नहीं रोक पाता था। पुस्तकों के अतिरिक्त तीर्थराम को मिट्टी के तेल पर खर्च करना पड़ता था। कालेज की पढ़ाई में गहरी रुचि और स्वतन्त्र अध्ययन में विशेष रुचि होने के कारण तीर्थराम रात को देर तक पढ़ता रहता था। कभी-कभी तो गणित की समस्याओं का समाधान खोजने में सारी-सारी रात जागते बीत जाती थी।

इन दिनों भी तीर्थराम की वेशभूषा अत्यन्त सादी थी, जैसी भारतीय ग्रामीण की हो सकती है। हाथ के कते खद्दर का कमीज-पाजामा और सस्ता देसी जूता। उसकी वेश-भूषा को देखकर कोई भी यह नहीं समझ सकता था कि यह कालेज का छात्र है।

तीर्थराम को लाहौर में पढ़ते कोई दस मास हुए थे कि उसे असंभावित रूप से छात्रवृत्ति मिलने का अवसर उपस्थित हुआ। गुजरांवाला नगर-पालिका अपने क्षेत्र के मैट्रिक में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले छात्र को प्रतिमास ८ रु० छात्रवृत्ति देती थी। १८८८ ई० में जमीतराय को योग्यता के आधार पर यह छात्रवृत्ति मिली थी। किन्तु जमीतराय ने किन्हीं कारणों से कालेज की पढ़ाई छोड़ दी। जब तीर्थराम को इसका पता चला तो उसने अपने गुरु श्री धन्नामल जी को लिखा कि वे यह छात्रवृत्ति तीर्थराम को दिलाने का प्रयत्न करें क्योंकि योग्यता-क्रम में जमीतराय के बाद तीर्थराम का ही नाम था। प्रयत्न करने पर यह छात्रवृत्ति १९ मार्च, १८८९ को

तीर्थराम को मिल गई। पर आर्थिक संकट अधिकांश में बना ही रहा।

बच्छोवाली के एक रुपया मासिक वाले जिस कमरे में तीर्थराम रह रहा था, वह स्वास्थ्य के लिए बड़ा हानिकारक था। उसमें धूप और हवा का अभाव तो था ही, टूटा-फूटा भी था। सीलन भरे इस मकान में मच्छरों की भरमार थी। सांप-बिच्छू भी कभी-कभी दिख जाते थे।

तीर्थराम ने इस मकान के सम्बन्ध में भगत धन्नामल जी को पत्र में लिखा था। उन्होंने सलाह दी थी कि यह मकान छोड़ दिया जाए और दूसरा मकान ले लिया जाए, पर तीर्थराम ने इस मकान में एकान्त और पठन-पाठन की स्वतंत्रता को महत्त्व देते हुए यहीं रहना ठीक समझा।

रुपया-पैसा पास न होने पर भी तीर्थराम इस सम्बन्ध में कभी चिंतित नहीं होता था। उसकी चिन्ता का विषय कुछ और ही था। जैसा कि उसने अपने एक सम्बन्धी को पत्र में लिखा था : "मेरी सबसे बड़ी आवश्यकता है एकान्त स्थान और मेरी सबसे बड़ी मांग है 'समय'। १. एकान्त, २. समय और ३. जिज्ञासा—ये तीन मेरी आन्तरिक अभिलाषाएं हैं।"

तीर्थराम यद्यपि एकान्त-प्रिय था, किन्तु वह सदा श्रेष्ठ ग्रन्थों के माध्यम से संसार की महान् से महान् विभूतियों के सम्पर्क में रहता था। वह उस वृक्ष की तरह था जो अपनी जड़ें धरती में खूब गहरे ले जाकर रस ग्रहण करता है और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अविचल और हरा-भरा बना रहता है। यद्यपि बाहरी रूप से उसे देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि उसने अपना विस्तार किया है। आन्तरिक गहराई ही महान् आत्माओं का मनोरथ होता है। सांसारिक जन जिसे उन्नति मानते हैं, महामना पुरुष उसके प्रति सदा उदासीन रहते हैं और महामना पुरुष जिस आत्मिक उन्नति के प्रति जागरूक रहते हैं, सांसारिक जन उसके प्रति सदा उदासीन रहते हैं। संभवतः इसी स्थिति के लिए भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।। २।६९।।

(साधारण जनों की जो रात्रि होती है, संयमी पुरुष उसमें जागता रहता है और जिसमें साधारण जन जागते रहते हैं, वह आत्मद्रष्टा मुनि

की रात होती है।)

सरदार पूरनसिंह जी ने तीर्थराम के छात्रजीवन का सार इन शब्दों में व्यक्त किया है :

"नए कपड़े न सिलवाना, एक रोटी कम खाना, कभी-कभी बिल्कुल निराहार रह जाना उनके लिए मामूली बात थी और किस लिए ? केवल इसलिए कि अर्द्ध-रात्रि में पुस्तकें पढ़ने के लिए तेल जुट जाए। सायंकाल से लेकर सूर्योदय तक अपने अध्ययन में तल्लीन रहना तो उनके विद्यार्थी-जीवन की एक साधारण-सी घटना थी। विद्या से उन्हें इतना प्रेम था और इस प्रेम ने उनके हृदय को इतना वशीभूत कर लिया था कि विद्यार्थी-जीवन की भौतिक आवश्यकताओं और साधारण छोटी-मोटी सुविधाओं का उन्हें कोई ध्यान ही न था। भूख और प्यास, सर्दी और गर्मी का उस अद्‌भुत ज्वाला पर कोई प्रभाव न पड़ता था, जो ज्ञान के लिए उनके हृदय में सदा जलती रहती थी। उनके विद्यार्थी-जीवन को देखने वाले आज भी[1] गुजरांवाला और लाहौर में जीवित हैं, जिन्होंने गोस्वामी जी को शुद्ध हृदय से रात और दिन अकेले, बिना किसी सहायता के परिश्रम करते हुए और बिना हथियार जीवन से लड़ते हुए देखा है। इन लोगों को कुछ ऐसे अवसर भी याद हैं जबकि दान-पुण्य का ढिंढोरा पीटने वाले इस देश में भी इस ब्राह्मण-बालक को लगातार कई दिनों तक प्रायः नहीं के बराबर भोजन मिलता था, किन्तु फिर भी आश्चर्य होता है कि कैसे उसके मुख-मण्डल की प्रत्येक नस-नाड़ी में एक अनिर्वचनीय सुख और शान्ति झलक मारती रहती थी।"

क्रिश्चियन कालेज की दुकान के हलवाई झंडूमल को किसी से पता चला कि तीर्थराम की आर्थिक स्थिति बहुत खराब है। उसके बाद वह तीर्थराम को भोजन के लिए निमंत्रित करने लगा।

एफ० ए० की परीक्षा का प्रवेश शुल्क ३ फरवरी, १८९० को जाना था। तीर्थराम के पास प्रवेश शुल्क भेजने के लिए रुपये नहीं जुट पा रहे थे। एक सज्जन से रुपये मिलने की बात थी, किन्तु मिले नहीं। इस स्थिति

१. यह १९२४ ई० में लिखा गया था।

की सूचना तीर्थराम ने भगत धन्नामलजी को दी और परीक्षा देने के लिए उनकी आज्ञा चाही। पर उनका पत्र आने से पूर्व ही जिनसे रुपए मिलने की बात थी, उन्होंने रुपये दे दिए और कालेज के प्रिंसिपल ने प्रवेश-पत्रों पर तीर्थराम से हस्ताक्षर करवाकर परीक्षा-शुल्क भिजवा दिया।

मार्च में परीक्षा हो गई। गणित और भौतिकी के प्रश्न-पत्र काफी कठिन थे, पर तीर्थराम ने उन्हें ठीक हल किया था।

धुंधुआते मिट्टी के तेल की लौ में अधिक समय तक पढ़ने के कारण तीर्थराम की आंखें खराब होने लगीं। रहने का कमरा भी ठीक नहीं था। तीर्थराम कभी मलेरिया ज्वर से ग्रस्त रहता तो कभी पेट में गड़बड़ होती। भरपेट भोजन ही नहीं मिलता था तो पौष्टिक भोजन का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। इस पर भी कभी-कभी भूखे रह जाना पड़ता था। होटल की कच्ची-पक्की रोटियां—ये सब चीज़ें पेट में गड़बड़ पैदा करने के लिए पर्याप्त थीं।

प्रिंसिपल ने तीर्थराम को आंखों की जांच करवाने के लिए कहा। डाक्टर ने ऐनक लगवाने की सलाह दी। उन दिनों लाहौर में ऐनकें नहीं बनती थीं, बम्बई से बनवाकर मंगवानी पड़ी।

१८९० की एफ० ए० परीक्षा में तीर्थराम अपने कालेज में सर्वप्रथम आया और पंजाब विश्वविद्यालय में योग्यताक्रम में उसका पच्चीसवां स्थान था।

इस बार तीर्थराम को छात्रवृत्ति मिल गई। बी० ए० में इसी कालेज में पढ़ने का तीर्थराम ने निश्चय किया।

१ अगस्त, १८९० से कालेज में छुट्टियां होने वाली थीं। तीर्थराम के गुरु भगत धन्नामल चाहते थे कि छुट्टियां तीर्थराम गुजरांवाला और मुरालीवाला में बिताए। पर तीर्थराम की इच्छा थी कि छुट्टियों में भी लाहौर में ही रहे और डटकर पढ़ाई करे। किन्तु तीर्थराम धन्नामल जी को नाराज भी नहीं करना चाहता था। अपनी स्थिति को स्पष्ट करने के लिए तीर्थराम ने अपने गुरु को एक लम्बा पत्र लिखा। इस पत्र को यहां उद्धृत करना अप्रासंगिक नहीं होता। १७ वर्ष के तीर्थराम की विचार-शक्ति और अध्ययन-निष्ठा का इससे अच्छा पता लगता है।

यह पत्र १९ जुलाई, १८९० को लिखा गया था।

"हमारी छुट्टियां पहली अगस्त से प्रारंभ होंगी। आज १९ जुलाई है। कृपा करके ऐसा कभी न सोचें कि मैं आपसे विमुख होता जा रहा हूं। जब कोई मनुष्य किसी काम को हाथ में लेता है तो कुछ समय तक उसमें लगे रहने के बाद उसे उसके सारे भेद समझमें आने लगते हैं और पता चल जाता है कि वह सर्वोतम ढंग से कैसे किया जा सकता है। फिर वह बिना सोच-विचारके ही वैसा काम करने के ढंग और साधन आदि समझ जाता है। भले ही वह उस कार्य-प्रणाली का कारण और हेतु न बतला सके किन्तु उसके मन में उनके ठीक होने का निश्चय रहता है। मैं आपको कारण नहीं बता सकता, यह काम तो विद्वानों का है। हर एक मनुष्य दार्शनिक नहीं होता। और अधिकतर व्यक्ति बिना कारण निर्धारित किए ही अपने ढंग से कार्य-सम्पादन करते हैं। जब मैं छोटा बच्चा था, तभी मैं कविता के छन्दों के स्वरों और संगीत के विषय में अपना मत रखता था। उस समय अपनी धारणा के विषय में न मैं तर्क दे सकता था और न उसकी व्याख्या कर सकता था। किन्तु अब दस वर्ष बाद, जब मैंने छन्द-शास्त्र के नियमों का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर लिया, तब मुझे मालूम हुआ है कि मेरी धारणा बिल्कुल ठीक थी। यदि तब मैं ठीक-ठीक नहीं बता सकता था, तो उसका अर्थ यह नहीं कि मेरा निर्णय भ्रमपूर्ण था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यथार्थ बुद्धि वाले व्यक्ति को हर एक बात के लिए आवश्यक कारण ढूंढना कोई अत्यन्त आवश्यक नहीं। अतः कभी-कभी कारणों पर अधिक जोर दिए बिना ही हमें उसका निर्णय मान लेना चाहिए, यदि हमें यह निश्चय हो कि वह व्यक्ति वास्तव में भला है और अपने शुद्ध अन्तःकरण के अनुसार चलने वाला है।

"मैं आपकी अवज्ञा करता हूं, ऐसा विचार ही कभी मेरे मन में नहीं उठता। आप भी सदा यही सोचें कि मेरे हर काम में आपकी आज्ञा-कारिता का सच्चा भाव भरा रहे।

"आपके विचार में मुझे अपनी छुट्टियां गुजरांवाला में आपके साथ बितानी चाहिए। आपकी आज्ञा है तो मुझे आना ही होगा। किन्तु मैं वहां सारा समय न बिताऊं, ऐसी मेरी हार्दिक इच्छा है। मैं इसके लिए

कुछ कारण उपस्थित कर सकता हूं। यद्यपि इस प्रकार सफाई देने की मेरी रंच मात्र भी इच्छा नहीं है। यह तो अपना समय नष्ट करना है। पर आप कहीं मुझे अवज्ञाकारी न समझ बैठें—यही सोचकर लिख रहा हूं। मेरी विनय यही है कि आप अपने प्रति मेरी भक्ति में कभी सन्देह न करें।

"मेरे कारण ये हैं : मैंने एक ओर लाहौर में ठहरने और दूसरी ओर अपने घर जाकर इष्ट-मित्रों एवं सम्बन्धियों से मिलने-जुलने का अन्तर समझ लिया है। केवल इतना ही नहीं कि वहां लिखने-पढ़ने के लिए आवश्यक एकान्त की सुविधा नहीं होती, अपितु मैंने देखा है कि वहां चित्त की वह गंभीरता नष्ट हो जाती है जो गूढ़ और कठिन प्रश्नों के हल के लिए अपेक्षित होती है। घर जाकर हम मोटे से हो जाते हैं और उत्तम विचारों की ग्राहक, चिन्तनशील सूक्ष्मधारा लुप्त-सी हो जाती है। कारण वहां भौतिक सुखों के स्पर्श से बुद्धि विकृत रहती है। लाहौर से बाहर मेरे लिए सर्वत्र ही अनुचित स्पर्श की सम्भावना रहती है और मेरा मन बिगड़ जाता है। आप कह सकते हैं—लाहौर कोई जंगल नहीं, यहां भी तो मनुष्यों से मिलना-जुलना होता रहता है। यह ठीक है। किन्तु यहां केवल अपरिचितों से मिलना होता है, यहां उस गहरे प्रेम से लोगों से मिलना नहीं होता, जैसे मैं घर के लोगों से मिलता हूं। लाहौर में मैं लोगों से मिलता हूं किन्तु मेरा ध्यान उनमें जमता नहीं। केवल ऊपरी ढंग से मिलना होता है। अपने लोगों से मिलने में हमें अपना मन उनमें लगाना पड़ता है। दूसरे लाहौर में मैं केवल विद्यार्थियों को जानता हूं। और उनका सहवास सदैव स्वास्थ्य-वर्द्धक होता है।

"आप यह भी पूछ सकते हैं कि क्या अन्य विद्यार्थी भी मेरी तरह लाहौर में रुकने वाले हैं ? रुकनुद्दीन जो सारे प्रान्त में सर्वप्रथम आया, अपने घर एक दिन को भी नहीं जाता।

"बिना परिश्रम कोई चमक नहीं सकता। मैं कड़ा परिश्रम करना चाहता हूं। यह सच है कि बहुत-से कुशाग्रबुद्धि विद्यार्थी घर जाएंगे, किन्तु मेरा विश्वास है कि संभवतः उन्हें अपने घरों में अध्ययन के लिए आवश्यक सुविधाएं प्राप्त हों। इसके अतिरिक्त बहुत-से मेरी तरह विवाहित नहीं हैं। और विवाहित होने पर भी प्रबल इच्छाशक्ति वाले

हो सकते हैं, जो अपने मन को बाहरी आमोद-प्रमोद के साधनों की ओर भटकने से रोक सकते हों। मैं उतना शक्ति-सम्पन्न नहीं। मुझे डर है कि मेरा वहां मन बिगड़ न जाए।

"जिसे लोग बुद्धि कहते हैं, वह भी अभ्यास एवं परिश्रम से उन्नति करती है। यदि कोई विद्यार्थी बिना परिश्रम के अच्छे अंकों से परीक्षा उत्तीर्ण कर लेता है, तो वह परीक्षा भर पास कर लेता है, उसे कभी पढ़ने का आनन्द नहीं मिल सकता। क्या आपको याद नहीं कि उस बार एक मनुष्य ने आपसे अपने नाम पर एक कविता बना देने की प्रार्थना की थी। दुनिया को वह भले ही धोखा दे सके कि वही इस कविता का रचयिता है। वह तो कहने-सुनने के लिए रचयिता बना था, उस कविता की रचना का सच्चा सुख तो आपने ही भोगा था। वह तो उस आदमी की तरह है जिसे बिना कमाए ही बहुत-सा धन मिल जाता है। ऐसे किसी के पास विशाल सम्पत्ति हो, पर उसे उसका स्वाद कभी नहीं मिल सकता। स्वाद तो केवल उसे ही प्राप्त होता है जो पसीना बहाकर धन कमाता है।

"दया करके मुझे अपने अध्ययन से वंचित न करें। समझ लीजिए मैं कहीं विदेशों में चला गया हूं। मुझे दो वर्ष की छुट्टी दे दें। जब पुत्र लौटेगा तब तो आपका है ही। जब सैनिक अपनी पूरी आत्मा से बढ़ता है तो उसे यह पता नहीं रहता कि वह किसका सैनिक है, उसका स्वामी कहां है अथवा स्वामी के साथ उसका क्या सम्बन्ध है। फिर भी सारे समय वह रहता तो है राजा ही का सैनिक, और वह अपनी सारी शक्ति के साथ राजा के प्रति अपनी स्वामी-भक्ति को चरितार्थ करता है। यही हाल मेरा है। यह न सोचें कि मैं गुजरांवाला न जाकर आपकी अवज्ञा करना चाहता हूं।"

बी० ए० में तीर्थराम ने अनेक मित्रों के कहने से और धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करने की आवश्यकता के लिए फारसी के बदले 'संस्कृत' विषय ले लिया। यद्यपि पहले उसने कभी संस्कृत भाषा नहीं पढ़ी थी।

तीर्थराम की आधी फीस कालेज के प्रो० गिलबर्टसन दे देते थे और उसके बदले तीर्थराम से कालेज का कुछ काम करवा लेते थे। किन्तु दिसम्बर १८६० में प्रो० गिलबर्टसन ने तीर्थराम को सूचित किया कि

अब उनके पास कालेज का कोई ऐसा काम नहीं है जिसे तीर्थराम से कराया जा सके। इसलिए अब यह सम्भव नहीं था कि वे तीर्थराम की आधी फीस देते। प्रो० गिलबर्टसन ने आश्वासन दिया था कि ज्यों ही तीर्थराम के करने योग्य कालेज का कोई काम हुआ, करवा लेंगे और आधी फीस नहीं लेंगे। किन्तु एक मास बाद ही प्रिंसिपल महोदय ने व्याख्यानों की प्रतिलिपियां तैयार करने का काम तीर्थराम को सौंप दिया।

तीर्थराम के प्रतिभाशाली और निर्धन छात्र होने के कारण कालेज के प्रिंसिपल महोदय उसमें विशेष रुचि लेते थे। तीर्थराम की दृष्टि की दुर्बलता को भांपकर उन्होंने ही उसे ऐनक लगवाने के लिए कहा था। अब उन्होंने तीर्थराम के कृश शरीर को देखकर कालेज-छात्रावास के एक विद्यार्थी रुकनुद्दीन को कहा कि वह व्यायाम कराए बिना तीर्थराम को कालेज से घर न जाने दिया करे।

इन्हीं दिनों पाठ्यक्रम से फारसी भाषा को हटा देने का निर्णय हुआ था, जिससे तीर्थराम को बड़ी प्रसन्नता हुई थी। किन्तु यह पता लगने पर कि पंजाब विश्वविद्यालय गणित के १५० अंकों को घटाकर १३० अंक कर देना चाहता है, तीर्थराम को बड़ी चिंता हुई। वह गणित को महत्त्वपूर्ण विषय मानता था और अन्य विषयों को गणित की तुलना में तुच्छ। यह अप्रैल १८९१ ई० की बात है।

अप्रैल मास के एक प्रातःकाल जब तीर्थराम प्रातः भ्रमण से लौटा तो देखा कि कमरे का ताला टूटा हुआ है। दैनिक उपयोग के बर्तन-कपड़े आदि चोर ले गया था, किन्तु तीर्थराम ने भगवान् का इस बात के लिए धन्यवाद किया कि चोर उसकी पुस्तकें छोड़ गया था।

चोरी होने के बाद इस एकान्त कमरे को बदलना एक तरह से आवश्यक हो गया था। लाला अयोध्याप्रसाद ने दो मकान ढूंढकर तीर्थराम को दिखाए, किन्तु उसे दोनों में से कोई भी पसन्द नहीं आया। इनमें से एक में जेल के कोई अधिकारी रहते थे, जो आर्यसमाजी थे। दूसरे का मालिक चाहता था कि तीर्थराम से मकान का किराया न ले किन्तु इसके बदले तीर्थराम उनके लड़के को पढ़ा दिया करे। तीर्थराम को यह सौदा बहुत महंगा लगा। एक रुपया महीना कमरे का किराया न लेकर मालिक-

मकान २५ रु० महीने की ट्यूशन करवाना चाहता था।

तीर्थराम के सामान की चोरी हो जाने का पता संभवतः प्रिंसिपल को लगा होगा। उसके स्वास्थ्य के लिए वे पहले ही अपनी चिंता व्यक्त कर चुके थे। बच्छोवाली से कालेज आने-जाने में भी तो तीर्थराम का समय खर्च होता था। अब उन्होंने छात्रावास के छात्रों को कहा कि तीर्थराम को कहें कि वह छात्रावास में आकर रहने लगे। बात यह थी कि तीर्थराम के कुछ सहपाठी उसके कमरे में गए थे और उन्होंने अनुभव किया था कि यह स्थान रहने के योग्य नहीं है। तीर्थराम के भोजन की व्यवस्था भी नितान्त असन्तोषजनक थी।

संभवतः उन छात्रों ने यह बात प्रिंसिपल महोदय को बताई होगी। इसी से प्रिंसिपल ने तीर्थराम को छात्रावास में आकर रहने की आज्ञा दी थी। तीर्थराम स्थान-परिवर्तन के लिए धन्नामल जी से आज्ञा लेना चाहता था किन्तु कालेज के डाक्टर ने कहा कि तुम्हें यह आज्ञा माननी ही होगी। बाद में प्रिंसिपल महोदय ने भी तीर्थराम को छात्रावास में आकर रहने के लाभ बताये।

तीर्थराम अभी छात्रावास में आने का निश्चय नहीं कर पाया था कि एक दिन उसने ज्यों ही अपने कमरे का दरवाजा खोला तो एक सांप उसकी ओर झपटा। तीर्थराम के शोर मचाने पर पास-पड़ोस के लोग आ गए और उन्होंने उसे मार डाला।

इस घटना के बाद तो सभी छात्र तीर्थराम को वहां एक दिन भी रहने देना नहीं चाहते थे। सारा हिसाब लगाकर देखा गया कि होस्टल में रहने पर केवल एक रुपया प्रति मास अधिक खर्च करना पड़ेगा और इसके बदले अच्छा भोजन मिलेगा और दूर से आने-जाने में जो समय लगता है, वह भी बचेगा। साथ ही बहुत-से छात्रों के बीच रहने से उनकी पुस्तकों को लेकर पढ़ना संभव होगा और पुस्तकें खरीदने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

इन दिनों तीर्थराम की आर्थिक स्थिति काफी खराब थी। अनेक बार ऐसा होता कि उसकी जेब में फूटी कौड़ी भी नहीं होती। मई, १८९१ से प्रिंसिपल और सहपाठियों की ओर से तीर्थराम को कालेज-होस्टल में आने

के लिए कहा जा रहा था किन्तु फरवरी, १८९२ तक यह बात टलती ही रही। फरवरी, १८९२ को दोबारा चोरी हो गई। चोर बिछौना और बर्तन उठाकर ले गया, किन्तु पुस्तकें अब भी सुरक्षित थीं और तीर्थराम को इससे सन्तोष था।

इस समय कालेज के हलवाई झंडूमल और लाला ज्वालाप्रसाद जी से तीर्थराम को कपड़े खरीदने तथा रुपये-पैसे से सहायता करने का आश्वासन मिला। लाहौर में तीर्थराम के तीसरे संरक्षक थे—लाला अयोध्याप्रसाद जी। वे परीक्षा-प्रवेश शुल्क जुटाने, मकान ढूंढने आदि कार्यों में तीर्थराम की सदा सहायता करते रहे।

गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है कि "मैं अपने भक्तों के योग-क्षेम की व्यवस्था करता हूं।" यही कारण था कि ईश्वराभिमुख तीर्थराम की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लोग आगे आते थे।

एक दिन प्रिंसिपल महोदय ने तीर्थराम को बुलाकर ५० रु० देते हुए कहा कि कोई सज्जन तुम्हें देने के लिए ये रुपये दे गए हैं। तीर्थराम ने रुपए देने वाले सज्जन का नाम जानना चाहा, किन्तु प्रिंसिपल ने नहीं बताया। तीर्थराम का अनुमान था कि रुपए प्रिंसिपल महोदय ने अपनी जेब से दिए होंगे।

तीर्थराम ने प्रिंसिपल महोदय से निवेदन किया कि इनमें से आधे रुपये कालेज की फीस आदि के लिए रख लें और आधे मुझे दे दें, किन्तु वे नहीं माने और सारे रुपये तीर्थराम को दे दिए।

जून, १८९१ में कालेज के गणित के अध्यापक बीमार पड़ गए और उनकी अनुपस्थिति में तीर्थराम प्रतिदिन एक घंटा गणित पढ़ाने लगा। इस समय तक तीर्थराम की अवस्था अठारह वर्ष भी नहीं हुई थी। किन्तु यह कितने आश्चर्य की बात है कि यही तीर्थराम बी० ए० की परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गया, जबकि उसके कुल अंक विश्वविद्यालय में सर्वाधिक थे एक विषय में अनुत्तीर्ण होने पर भी। यह विषय था अंग्रेजी। अंग्रेजी विषय में तीर्थराम के अंक उत्तीर्ण होने के लिए आवश्यक अंकों से कुछ ही कम थे, फिर भी सब विषयों के अंकों के जोड़ की दृष्टि से वह विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम था। संभवतः शिक्षा-जगत् की यह विचित्र घटना

तीर्थराम के जीवन में पहली और अन्तिम बार घटी थी। यद्यपि सभी यह चाहते थे कि इस प्रतिभाशाली छात्र को उत्तीर्ण घोषित किया जाना चाहिए, किन्तु जड़ताग्रस्त दफ्तरशाही के कारण कुछ नहीं हो सका। तीर्थराम बी० ए० में पूरे पंजाब विश्वविद्यालय में सर्वाधिक अंक लेकर भी अंग्रेज़ी में कुछ अंक कम होने के कारण अनुत्तीर्ण घोषित कर दिया गया।

इसके परिणामस्वरूप तीर्थराम को मिलने वाली छात्रवृत्ति बन्द हो गई। परीक्षा में असफलता के इस धक्के से तीर्थराम का हृदय टूक-टूक हो गया। विपत्तियों का पहाड़ उसके सिर पर टूट पड़ा और उसके लिए परम पिता परमात्मा के अतिरिक्त कोई सम्बल न रहा।

तीर्थराम की प्रवृत्ति स्वभाव से ही धार्मिक, ईश्वराभिमुख थी। भगत धन्नामल जी ने उसे और भी दृढ़ बनाया था और जैसे अपने पुरुषार्थ से त्राण न पाकर ग्राहाभिभूत गज ने आर्त स्वर में भगवान् को पुकारा था, वैसे ही तीर्थराम की ईश्वर-निर्भरता अधिक उज्ज्वल रूप में सामने आई।

१८९२ के अगस्त मास में तीर्थराम पुनः कालेज में भर्ती हो गया। कालेज के हलवाई झंडूमल ने तीर्थराम को नित्यप्रति उसके घर भोजन करने के लिए आग्रह किया।

तीर्थराम इस बात के लिए प्रयत्नशील था कि उसे कोई ट्यूशन मिल जाए।

अक्तूबर, १८९२ में अधिक वर्षा के कारण वह घर गिर गया जिसमें तीर्थराम रहता था। किसी तरह तीर्थराम का सामान और पुस्तकें बचा ली गईं और ये चीजें झंडूमल के घर पर रख दी गईं। नये मकान का प्रबन्ध होने तक झंडूमल ने तीर्थराम को अपने घर पर रहने के लिए कहा।

कहा नहीं जा सकता कि ऐसे क्या कारण थे कि प्रिंसिपल और सहपाठियों के बार-बार आग्रह करने पर भी तीर्थराम कालेज के छात्रावास में रहने क्यों नहीं गया। उसके धन्नामल जी को लिखे पत्रों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उसने छात्रावास में रहने का निश्चय कर लिया है। एक पत्र में तो (११ फरवरी, १८९२) तीर्थराम ने उन्हें लिखा था: "शायद आज (होस्टल) चला जाऊं!" तीर्थराम को ट्यूशन के लिए दौड़धूप करते देखकर

उसके प्राध्यापकों ने उसे सलाह दी कि १५.०० रु० मासिक की ट्यूशन के लिए अपना समय नष्ट करना समझदारी की बात नहीं होगी।

दिसम्बर, १८९२ में तीर्थराम ने अपने ही एक सहपाठी को ट्यूशन पढ़ाना प्रारम्भ किया था। यद्यपि यह तय नहीं था कि प्रतिमास क्या मिलेगा, फिर भी तीर्थराम को विश्वास था कि वे उसे उचित पारिश्रमिक देंगे।

कालेज के प्रोफेसर गिलबर्टसन तीर्थराम के प्रति विशेष कृपालु थे। एक दिन श्री गिलबर्टसन ने तीर्थराम को बुलाकर एक लिफाफा हाथ में थमा दिया। तीर्थराम ने कुछ घंटे बाद जब वह लिफाफा खोलकर देखा तो उसमें तीस रुपये थे।

तीर्थराम के पास इन दिनों एक पैसा भी नहीं था। वह प्रोफेसर साहब के पास यह कहने गया कि मुझे इतने रुपयों की आवश्यकता नहीं है और वे इनमें से बीस रुपये वापस ले लें; किन्तु वे नहीं माने और तीस के तीस रुपये तीर्थराम को रखने पड़े।

इस घटना का पत्र में उल्लेख करते हुए तीर्थराम ने भगत धन्नामल को लिखा, "अब यदि आप आ जाएं तो इन बीस रुपयों का बोझ मेरे सिर से उतार लें। यदि आप उचित समझें तो इनमें से कुछ, जितना आप चाहें, मेरी मां को दे दें। मैं रुपया डाक से इसलिए नहीं भेजता हूं कि आपके दर्शन करना चाहता हूं। मैं दस रुपया इसलिए अपने पास रख छोड़ना चाहता हूं कि मुझे दो मास की फीस देनी है। अपने दैनिक व्यय के लिए तो ज्वाला-प्रसाद जी का मुझे सहारा है ही।"

अन्ततोगत्वा १८९३ के फरवरी के मास में तीर्थराम ने छात्रावास में रहना प्रारम्भ कर दिया। अब तक दोनों समय का भोजन झंडूमल हलवाई के घर होता था। छात्रावास में आ जाने पर प्रातः का भोजन छात्रावास में और सायं का झंडूमल हलवाई के घर करना निश्चित हुआ।

इसी प्रकार पहनने के कपड़े और दूसरी छोटी-मोटी आवश्यकताएं भी झंडूमल और लाला ज्वालाप्रसाद पूरी कर देते थे।

बी० ए० की परीक्षा हो गई। अप्रैल में परिणाम घोषित हो गया। तीर्थराम पंजाब विश्वविद्यालय में सर्व-प्रथम रहा।

विश्वविद्यालय का बी० ए० का सर्वश्रेष्ठ छात्र होने के कारण तीर्थराम

को साठ रुपये मासिक छात्रवृत्ति मिल गई। पैंतीस रुपये की छात्रवृत्ति तो विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम आने के लिए मिली और पच्चीस रुपये मासिक गणित में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने के लिए मिली। इसके अतिरिक्त उसको एक स्वर्णपदक और उपाधि-वितरण के समय ५० रुपये का अन्य पुरस्कार भी मिला। वह अपनी सफलता और छात्रवृत्ति मिलने का कारण भगवद्-कृपा ही समझता था।

इस बार की बी० ए० परीक्षा की एक उल्लेखनीय घटना यह है कि गणित के प्रश्न-पत्र में परीक्षक ने १३ प्रश्न पूछे हुए थे और उनमें से किन्हीं ९ प्रश्नों के उत्तर देने के लिए कहा गया था।

तीर्थराम ने सारे के सारे तेरह प्रश्न हल कर दिए और लिख दिया कि किन्हीं भी ९ प्रश्नों को जांच लिया जाए। अबकी बार तीर्थराम का अंग्रेजी का प्रश्न-पत्र भी बहुत अच्छा हुआ था। तीर्थराम ने स्कूल स्तर पर फारसी का अध्ययन किया था और एफ० ए० में भी फारसी ही पढ़ी थी, किन्तु बी० ए० में यह विचार करके कि ब्राह्मण होने के कारण उसे संस्कृत का अध्ययन करना ही चाहिए, उसने फारसी के स्थान पर संस्कृत भाषा ले ली थी। इससे पूर्व तीर्थराम ने संस्कृत का कभी एक शब्द नहीं पढ़ा था। बी० ए० में जब संस्कृत विषय लिया तो संस्कृत के प्राध्यापक महोदय ने उसके दोषपूर्ण उच्चारण को सुनकर निराशा व्यक्त की थी। किन्तु अच्छी धारणा-शक्ति और सतत अभ्यास के कारण संस्कृत में भी बहुत अच्छे अंक आए।

जुलाई, १८९३ ई० के दिन की घटना है कि तीर्थराम रावी के तट पर घूमने गया हुआ था। गवर्नमेंट कालेज के प्रिंसिपल श्री बैल भी उसी ओर आए हुए थे। इतने में वर्षा होने लगी। तीर्थराम के पास छाता होने का तो प्रश्न ही नहीं था। प्रिंसिपल महोदय तीर्थराम से कुछ देर बात करते रहे और बाद में कहा कि वह उनके साथ ही गाड़ी में शहर चले। मार्ग में बातों के क्रम में तीर्थराम ने कुछ अंग्रेजी कविताएं श्री बैल को सुनाईं। तीर्थराम पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त क्या पढ़ता है, उसकी घर की स्थिति कैसी है, पढ़कर क्या करना चाहते हो ?—श्री बैल ने पूछा।

अपने जीवन-उद्देश्य के बारे में यद्यपि मैंने भविष्य के बारे में कोई निश्चित योजना नहीं बनाई है, किन्तु चाहता हूं कि ईश्वर और ईश्वर के

ही प्रतिरूप मनुष्य की सेवा में अपना जीवन लगा दूं। इसके अतिरिक्त यदि सुयोग मिले तो मैं लोगों को गणित की शिक्षा देकर अपने को कृतार्थ समझूंगा। तीर्थराम का उत्तर था।

बातें करते-करते गाड़ी गवर्नमेंट कालेज के अहाते में जा पहुंची। श्री बैल तीर्थराम को छात्रावास की व्यायामशाला में ले गये, जहां बहुत-से छात्र तरह-तरह के व्यायाम कर रहे थे।

श्री बैल ने तीर्थराम से पूछा—"तुम कौन-सा व्यायाम करते हो।" तीर्थराम ने उत्तर दिया कि मैं चारपाई का व्यायाम करता हूं। श्री बैल ने इससे पूर्व इस व्यायाम के बारे में देखा-सुना नहीं था। उन्होंने तत्काल छात्रावास से एक चारपाई मंगवाई और तीर्थराम से चारपाई व्यायाम का प्रदर्शन करने को कहा। तीर्थराम ने चारपाई के दो पायों को पकड़कर धरती से ऊपर उठा लिया और इस प्रकार सौ बार चारपाई को ऊपर-नीचे उठाकर दिखाया।

अब श्री बैल ने दूसरे छात्रों से इसी प्रकार चारपाई को ऊपर-नीचे उठाने के लिए कहा। कोई भी छात्र चारपाई को बीस बार से अधिक नहीं उठा सका।

० ० ०

फोरमैन क्रिश्चियन कालेज में एम० ए० की पढ़ाई नहीं होती थी, इसलिए तीर्थराम ने गवर्नमेंट कालेज लाहौर में एम० ए० में प्रवेश ले लिया। भगत धन्नामल जी के प्रति उसकी श्रद्धा अब भी ज्यों की त्यों थी और वह हृदय से उन्हें गुरु और देवता मानता था।

इन दिनों तीर्थराम की ईश्वरनिष्ठा और निर्भरता में कथनीय वृद्धि हुई और अध्यात्म के पथ पर उसने कुछ और सीढ़ियां पार कर लीं।

तीर्थराम ने अपने एक पत्र में भगत धन्नामल जी को सूचित किया था कि उसे प्रायः अनाहत नाद सुनाई देता है। यह अगस्त, १८९२ की बात है।

इन्हीं दिनों वेदान्त के अन्यतम ग्रन्थ 'योगवासिष्ठ' का स्वाध्याय भी तीर्थराम ने प्रारम्भ कर दिया था।

इन्हीं दिनों तीर्थराम ने अनुभव किया कि उसके चित्त की चंचलता में

कथनीय कमी आई है। हर्ष-शोक के साधारण विषयों में उत्साह और उद्वेग होना कम हो गया है। इन दिनों तीर्थराम ने पुस्तकें खरीदने के अपने व्यसन पर भी काबू पा लिया। हां, बढ़िया औटा हुआ दूध पीने में उसकी रुचि खूब थी।

तीर्थराम से कोई एक वर्ष बड़ी एक बहन थी—नाम था तीर्थदेवी। जनवरी १८९४ में उसका देहान्त हो गया। तीर्थराम इसे बहुत प्यार करता था। उसकी मृत्यु का समाचार मिलने पर वह घंटों फूट-फूटकर रोया था।

तीर्थराम ट्यूशन भी पढ़ाता रहा। जिस बी० ए० के छात्र को वह ट्यूशन पढ़ाता रहा था, १८९४ के मई मास में वह बी० ए० में उत्तीर्ण हो गया। इससे तीर्थराम को स्वाभाविक प्रसन्नता का अनुभव हुआ।

तीर्थराम छात्रवृत्ति और ट्यूशन से प्राप्त रुपयों का कुछ भाग अपने ऊपर खर्च करता था और शेष अपने परिवार को भेज देता था।

उसकी ईश्वरनिष्ठा—ईश्वर की अहैतुकी कृपा पर विश्वास बढ़ता जा रहा था—यह उन पत्रों से विदित होता है जो उसने इन दिनों अपने गुरु भगत धन्नामल जी को लिखे थे। एक पत्र में तीर्थराम ने ५ जून, १८९४ को लिखा था; "अब मुझे उस प्रभु की बहुत-सी बातें मालूम हो गई हैं। मैं आपको किसी दिन सुनाऊंगा।"

एक अन्य पत्र को पढ़ने से जो तीर्थराम ने धन्नामल जी को लिखा था, यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि तीर्थराम की तत्त्वज्ञान में गहरी पैठ होती जा रही है। वह 'वासुदेवः सर्वमिति' या घट-घट में 'एकमेव अद्वितीय ब्रह्म' को देखने लगा था। "···जब चींटियों की सारी बातचीत समाप्त हो गई तब मैंने उन्हें (चींटियों को) समझाया—ऐ मेरे ही बदले हुए अहंकार, मेरे दूसरे रूप, यह बड़ा भारी धड़ भी निर्जीव है। वह तो आत्मा के चलाने से चलता है। यह सारी चमक-दमक एक आत्मा से प्रकट होती है।"

तीर्थराम की दिनचर्या बड़ी व्यस्त थी। वह एक-एक क्षण का हिसाब रखता था और उसका सदुपयोग करता था। वह प्रायः पांच बजे उठता और रात को साढ़े दस बजे सोता।

कई बार पढ़ते-पढ़ते रात के बारह भी बज जाते। सड़क पर आते-जाते भी तीर्थराम पढ़ता रहता। इन दिनों भी वह यथासंभव निर्धन छात्रों

को पुस्तकें देकर या पढ़ाकर उनकी सहायता करता। भला तीर्थराम से अधिक इस बात को कौन जान सकता था कि निर्धनता की स्थिति में पढ़ना कितना कठिन है ! वह स्वयं वर्षों तक इस स्थिति का भुक्त-भोगी रहा था और अब छात्र-वृत्ति से अपना खर्च चलाता था। फिर भी वह यथासंभव दूसरे छात्रों की सहायता करने के लिए तत्पर रहता।

इन्हीं दिनों हम देखते हैं कि तीर्थराम अपने गुरु भगत धन्नामल को पत्रों में कुछ सुझाव देता रहता था। इसमें कुछ भी विचित्रता नहीं है। गुरु गुड़ और चेला चीनी की लोकोक्ति हमने सुनी है। और यही हुआ भी। श्री धन्नामल को प्रारम्भ में जो सिद्धि जैसी कुछ प्राप्ति हुई थी, वह बाद में समाप्त हो गई थी। वे फिर से नीचे की भूमिका में उतर आए थे। श्री धन्नामल का उत्तर-जीवन शान्ति और आनन्द का जीवन नहीं रहा था। तभी तो तीर्थराम ने उन्हें एक पत्र में लिखा था : "...आप उनके साथ शान्ति स्थापित कर लें। आप चाहे उनका भोजन स्वीकार करें, या न करें, यह दूसरा प्रश्न है। आप जैसा चाहें वैसा करें, पर मनुष्य-मनुष्य के बीच हमें शान्ति का व्यवहार रखना चाहिए। क्षमा ही साधुओं का भूषण है। मैं जानता हूं, इस तरह ईश्वर आपको अपूर्व शान्ति देगा।"

एक दूसरे पत्र में तीर्थराम ने लिखा : "...आपको भी अपने मकान की छत पर दुनिया से ऊपर रहना चाहिए और 'योग-वासिष्ठ' जैसी पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिए।"

एक अन्य पत्र में तीर्थराम ने लिखा था : "...उपवास करना अच्छा होता है। हलका भोजन और परिपक्व पाचन ईश्वर की सचाई का अर्द्धांश प्राप्त करा देता है।"

शिष्य का इस प्रकार न केवल गुरु से आगे बढ़ जाना अपितु गुरु के आध्यात्मिक जीवन की उन्नति में भी सहायक होना हम अन्यत्र भी देखते हैं।

रामकृष्ण परमहंस को तांत्रिक साधना की दीक्षा देने वाली भैरवी ब्राह्मणी के आध्यात्मिक जीवन की पूर्णता-सम्पादन करने में, बाद में रामकृष्ण परमहंस ने विशेष सहायता प्रदान की थी, यह सर्व-विदित है। उनके द्वारा वैसा न किए जाने पर भैरवी ब्राह्मणी के लिए दिव्य भाव में

प्रतिष्ठित होना कभी सम्भव नहीं था। श्री रामकृष्ण परमहंस भैरवी ब्राह्मणी को योगमाया की अंशभूत कहते थे। इसी भैरवी ब्राह्मणी ने श्री रामकृष्ण को तोतापुरी जी से वेदान्त की दीक्षा लेने से विरत करने का प्रयत्न किया था। वे उन्हें एक ओर तो ईश्वरांश संभूत मानती थीं और दूसरी ओर कभी-कभी अभिमानपूर्वक यह भी कहती थीं—इसके (श्री रामकृष्ण के) पास जो ज्ञान है, वह मेरा दिया हुआ है।

ज्ञान-गरिमा में पारंगत होने पर भी श्री रामकृष्ण भैरवी ब्राह्मणी के प्रति पूर्ण आदर-भाव रखते थे और यही बात हम तीर्थराम के जीवन में भी देखते हैं।

० ० ०

एम० ए० की परीक्षा समीप आ रही थी। तीर्थराम को परीक्षा-शुल्क के लिए ५० रुपयों की आवश्यकता थी। तीर्थराम ने सम्भवतः अपने पिताजी को इसके लिए लिखा होगा। उनसे निराशाजनक उत्तर पाकर तीर्थराम ने सारा विवरण भगत जी को लिखा था। १३ नवम्बर, १८९४ को लिखे पत्र में तीर्थराम ने लिखा : "मेरे पिता ने लिखा है कि अपने छोटे वजीफे में से २५ रुपया बचाऊं और दूसरे वजीफे में से दो मास तक पांच-पांच रुपया बचाऊं। इन ३५ रुपयों के होने पर पन्द्रह रुपया वे भेजेंगे और इस प्रकार मेरी परीक्षा-फीस के ५० रुपये पूरे हो जाएंगे। किन्तु मेरा निवेदन यह है कि २५ रुपयों में से सवा बारह रुपया तो मासिक फीस के कट जाते हैं, और छः रुपया मुझे उन दिनों की गैरहाजिरी के कारण देने होंगे जब मैं रोग-शय्या पर था। इसके अतिरिक्त मुझे जाड़े के कपड़े बनवाना और खाना-पीना है। ऐसी हालत में मैं पांच रुपया मासिक कैसे बचा सकूंगा ? कल मैंने जाड़े की पोशाक मोल ली थी—ड्रिल का एक पाजामा, एक बास्कट और कश्मीरे का एक कोट। इन सबमें मेरे ७ रुपए १२ आने व्यय हो गए।

"किन्तु ये सब बातें मैं पिताजी को नहीं समझाना चाहता। मुझे विश्वास है कि मेरे मौसा और मेरे श्वसुर मेरी सहायता करेंगे। किन्तु परवाह किसी की नहीं। ईश्वर तो मेरी सहायता करेगा ही, जैसे कि अब तक करता आया है।"

तीर्थराम श्री धन्नामल जी को निरन्तर पत्र लिखता रहता था। इसमें जब कभी रुकावट आती थी तो उसका एक मात्र कारण यह होता था कि तीर्थराम की जेब में कार्ड खरीदने के लिए एक पैसा तक नहीं होता था। उन दिनों कार्ड का मूल्य एक पैसा ही था।

तीर्थराम अपनी आध्यात्मिक उन्नति को अनुभव कर रहा था जो निरन्तर गतिशील थी। इस स्थिति का विवरण स्वयं तीर्थराम ने यों दिया था :

"अपने शरीर के पंचनद में से द्रुतगति के साथ भगवान के मन्दिर की ओर बढ़ रहा हूं। मैं तो सत्य के साथ घुलमिल जाना चाहता हूं।"

स्वाध्यायशील तीर्थराम ने पुस्तकों में संचित ज्ञानराशि से पूरा-पूरा लाभ उठाया था। पुस्तकों के सम्बन्ध में उसकी धारणा निम्नलिखित रूप में व्यक्त हुई है :

"मेरी राय में पुस्तकें मोल लेते समय हमें रुपयों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। पुस्तकों का मूल्य चाहे जितना अधिक हो, एक अच्छी पुस्तक के विषय की तुलना में यह सदैव नहीं के बराबर है। उन पिछले दिनों की याद कीजिए, जब छोटी-मोटी पाण्डुलिपियों के सुन्दर संस्करणों के लिए लोगों को सैकड़ों रुपए व्यय करने पड़ते थे।"

१८९३ ई० में ऐसी संभावना दिखती थी कि तीर्थराम को कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, लन्दन में गणित का विशेष अध्ययन करने के लिए शोध छात्रवृत्ति मिल जाएगी। गवर्नमेंट कालेज के प्रिंसिपल श्री बैल और पंजाब विश्वविद्यालय के असिस्टैंट रजिस्ट्रार श्री चन्द्रनाथ मित्र इसके लिए प्रयत्नशील थे, किन्तु ईश्वरेच्छा कुछ और थी। यह शोध-वृत्ति तीर्थराम को न मिलकर एक अन्य व्यक्ति श्री परांजपे को मिल गई।

कुछ मित्रों और शुभचिन्तकों ने तीर्थराम को सलाह दी थी कि वह प्रोविंशियल सिविल सर्विस में जाने के लिए यत्न करे। परन्तु तीर्थराम ने यह कहकर इस सुझाव को अस्वीकार कर दिया—"मैंने जो कुछ अर्जित किया, वह जनता में बांटने के लिए है, बेचने के लिए नहीं है।"

तीर्थराम की केवल मात्र एक ही सांसारिक महत्त्वाकांक्षा थी, कि वह गणित का प्राध्यापक बने।

तीर्थराम के छात्र-जीवन की एक विचित्र घटना का उल्लेख सरदार पूरनसिंह ने किया है, जो उनके शिष्य थे। उनके कथनानुसार यह घटना स्वयं स्वामी रामतीर्थ ने उन्हें बताई थी।

"एक रात को राम ने उच्च गणित के कुछ बहुत ही कठिन और जटिल प्रश्न हल करने के लिए उठाए और मन में प्रण कर लिया कि सूर्योदय के पहले ही इन सबको हल कर डालूंगा और यदि हल न कर सका तो यह सिर इस तन से पृथक् कर दूंगा। इसी अभिप्राय से राम ने अपने आसन के नीचे एक तेज खंजर भी रख लिया। निस्सन्देह राम का यह काम उचित नहीं कहा जा सकता; किन्तु सही हो या गलत, इससे ज्ञात होता है कि ऐसी ही कठोर साधना से राम ने उस ज्ञान का सम्पादन किया है जो तुम इस समय उसके पास देखते हो। अच्छा, सुनो, उन चार प्रश्नों में से तीन प्रश्न तो आधी रात तक हल हो गए। किन्तु चौथा बड़े चक्कर डाले हुए था—राम उसे किसी प्रकार हल न कर सका और उषा की प्रथम रश्मियां वातायन में से झांकने लगीं। अपने प्रण का पक्का राम उठा और तेज़ खंजर लेकर मकान की छत पर जा चढ़ा। नहीं, उसने खंजर की बारीक नोक गर्दन पर रख भी दी। खंजर का रखना था कि उसने तुरन्त थोड़ी-सी खरोंच बना दी और बूंद-बूंद करके लहू टपकने लगा, किन्तु लो, राम हक्का-बक्का रह गया। प्रश्न का हल आकाश में सुनहले अक्षरों में लिखा हुआ चमक रहा था। राम ने उसे देखा और नीचे आकर कागज पर लिख लिया।"

एम० ए० की परीक्षा में प्रशनपत्र अत्यन्त कठिन आए थे। एम० ए० गणित में थोड़े-से छात्र परीक्षा देने वाले थे और उनमें तीर्थराम एकमात्र छात्र था जो सफल हुआ था। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि—इस सफलता से उसे, उसके सम्बधियों और मित्रों को कितनी प्रसन्नता हुई होगी।

एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद अब नौकरी मिलने की समस्या थी। नौकरी मिलना कभी भी बहुत आसान नहीं रहा और उन दिनों तो और भी कठिन था, इस पर भी निर्धनों तथा बड़े लोगों तक न पहुंच सकने वालों के लिए तो और भी कठिन था।

नौकरी की खोज में तीर्थराम को पता चला कि पेशावर के स्कूल में मुख्याध्यापक का स्थान रिक्त है किन्तु वेतन बहुत कम था—केवल ५०-६० रुपये। इसके अतिरिक्त प्रिंसिपल श्री बैल ने, जो तीर्थराम के संरक्षक जैसे थे, इसके लिए मना किया।

अमृतसर कालेज में गणित के अध्यापक अवकाश-ग्रहण करने वाले थे। तीर्थराम वहां अपनी नियुक्ति के लिए प्रयत्नशील था, पर उनका अवकाश-ग्रहण एक वर्ष के लिए स्थगित हो गया।

प्रिंसिपल श्री बैल ने पंजाब शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर को तीर्थराम को उपयुक्त स्थान पर नियुक्त करने के लिए लिखा था।

बरेली और मेरठ में लेक्चरार का स्थान मिल रहा था किन्तु तीर्थराम नहीं चाहता था कि वह पंजाब छोड़कर बाहर जाए।

प्रिंसिपल श्री बैल के सुझाव पर तीर्थराम ने एफ० ए० और बी० ए० कक्षाओं के छात्रों को गणित की ट्यूशन सामूहिक रूप से पढ़ाने का निश्चय किया और एफ० ए० के १० रु० और बी० ए० के लिए १५ रु० फीस निश्चित की। किन्तु इसमें भी सफलता नहीं मिली। गर्मी के दिनों की इसी भागदौड़ में तीर्थराम का स्वास्थ्य गिरने लगा और थकान अनुभव होने लगी। उसने कुछ दिन अपने गांव जाकर विश्राम करने का निश्चय किया और मुरालीवाला चला गया।

इस विश्राम से स्वास्थ्य में वांछित सुधार हुआ तो तीर्थराम फिर लाहौर वापस आ गया और फिर नौकरी के लिए दौड़धूप प्रारम्भ कर दी।

प्राध्यापन-कार्य

सितम्बर, १८९५ में श्री तीर्थराम की मिशन हाई स्कूल स्यालकोट में द्वितीय अध्यापक के पद पर नियुक्ति हो गई। ८० रुपये प्रति मास वेतन था। स्कूल में पढ़ाने के बाद जो समय बचता था, उसमें तीर्थराम सनातन

धर्म सभा, स्यालकोट का कार्य करते थे।

सनातन धर्म सभा के मंच से श्री तीर्थराम धर्म और देशभक्ति सम्बन्धी व्याख्यान देते थे। उस समम देश परतंत्र था और देशभक्ति की भावना जगाना देश की स्वतंत्रता के लिए अत्यन्त आवश्यक था।

श्री तीर्थराम के हृदय से निकली हुई वाणी को सुनने के लिए श्रोताओं की भीड़ जुटने लगी और साधारण जनता के अतिरिक्त स्थानीय उच्च सरकारी अधिकारी भी आने लगे।

श्री तीर्थराम की वाणी में ऐसा जादू था कि श्रोता मंत्रमुग्ध की तरह उसे सुनते और भावातिरेक में श्रोताओं की आंखों से अश्रुधारा बहने लगती।

दिसम्बर में स्यालकोट में ही तीर्थराम को अपनी मातृ शिक्षा-संस्था फोरमैन क्रिश्चियन कालेज, लाहौर में गणित के प्राध्यापक पद का नियुक्ति पत्र मिल गया। बी० ए० तक तीर्थराम इसी कालेज में पढ़े थे। उनका एक स्वप्न साकार हुआ। उनमें गणित का अध्यापक बनने की महत्त्वाकांक्षा थी, और वह पूरी हुई। उनकी केवल यही एक सांसारिक महत्त्वाकांक्षा थी। और दूसरी महत्त्वाकांक्षा जो पारमार्थिक थी, उसे भी भविष्य में हम पूरा होता देखते हैं। वह आकांक्षा थी—जीवन का एक-एक क्षण, एक-एक श्वास प्रभुभक्ति में, प्रभु-सेवा में अर्पित करना।

महामना पुरुष सत्य-संकल्प होते हैं—इसका अभिप्राय यह है कि वे जो कुछ भी संकल्प करते हैं, वह पूरा होता है।

स्यालकोट में ही श्री तीर्थराम ने द्वन्द्व सहन करने की सामर्थ्य—तितिक्षा—अर्जित करने के लिए विविध प्रयोग प्रारंभ कर दिए थे। भविष्य में उन्हें जिस भूमिका में प्रवेश करना था, उसके लिए इस प्रकार की साधना आवश्यक थी।

अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा था: "मैंने पिछले आठ दिनों से कुछ भी भोजन नहीं किया है, केवल दूध पर रहता रहा हूं। किन्तु मैं अभी-अभी तीस मील की यात्रा से लौटा हूं और कुछ भी थकावट नहीं मालूम होती।"

तीर्थराम ने स्यालकोट मिशन स्कूल की सेवा से सत्र समाप्त होने पर मार्च, १८९६ में छुट्टी ली। स्कूल के छात्रों, अध्यापकों, सनातन

धर्मावलंबियों तथा नगरवासियों ने श्री तीर्थराम को भाव-भीनी विदाई दी और वे लाहौर आ गए।

अप्रैल, १८९६ में मिशन कालेज में उन्होंने गणित प्राध्यापक का पद ग्रहण कर लिया। जहां उन्हें २०० रुपये प्रति मास वेतन मिलता था, जो पर्याप्त था और अब वे अपने पिता और गुरु की आर्थिक सेवा करने में समर्थ थे।

रत्न किसी को खोजने नहीं जाता, रत्न पारखी ही उसकी खोज करते हैं। सनातन धर्म शिक्षासमिति, लाहौर ने, जिसके अधीन अनेक स्कूल थे, श्री रामतीर्थ को अपना सदस्य चुन लिया। संप्रति लाहौर-स्थित सनातन धर्म स्कूल के गणित और विज्ञान विभाग की देख-रेख का कार्य श्री तीर्थराम को सौंपा गया। श्री तीर्थराम की देख-रेख में स्कूल के इन विभागों को नया जीवन मिला और उनकी कार्यक्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

कालेज में श्री तीर्थराम बड़े मनोयोग से गणित पढ़ाने लगे। कुछ मास कार्य करने के पश्चात् उनको और ऊपर का वेतनस्तर मिल गया। इसके अतिरिक्त पंजाब विश्वविद्यालय ने उन्हें गणित का परीक्षक नियुक्त किया। इस कार्य से भी उन्हें कुछ आय होने लगी, पर श्री तीर्थराम का मन कभी भी धन कमाने या जोड़ने की ओर नहीं झुका। परिवार, गुरु और अपने जीवन-निर्वाह के बाद उनके पास जो कुछ बचता, उसे निर्धन छात्रों की सहायता करने और अतिथि-सत्कार में खर्च कर देते।

कालेज की नौकरी प्रारंभ करने के बाद वे अपनी पत्नी को लाहौर ले आए थे। संभवतः उनके इस कार्य से उनके पिता फिर अप्रसन्न हुए थे, श्री तीर्थराम के एक पत्र से ऐसा लगता है, किन्तु उनकी यह अप्रसन्नता भी शीघ्र ही दूर हो गई थी। शिशु-जैसे निश्छल-सरल तीर्थराम के प्रति अधिक समय तक अप्रसन्न रहना संभव ही नहीं था।

श्री तीर्थराम द्वारा लिखे पत्रों का भली प्रकार से अध्ययन करने पर लगता है कि यद्यपि उन्होंने अभी तक विधिवत् संन्यास ग्रहण नहीं किया था तथापि वे अपने विचार और व्यवहार में संन्यासी बन चुके थे। ठीक भी है; वास्तविक संन्यास ग्रहण के लिए मन का संन्यासी होना अत्यन्त आवश्यक है। इस बात की साक्षी के लिए अन्तःसाक्ष्य के रूप में उनके पत्र का एक

अंश प्रस्तुत है : "…इस संसार की धन-सम्पत्ति बटोरने में मुझे कोई हर्ष नहीं, कोई प्रसन्नता नहीं। अपनी स्त्री के लिए आभूषण बनवाने में भी मुझे कोई खुशी नहीं। मुझे मेज-कुर्सी आदि किसी सामान की आवश्यकता नहीं। मेरे लिए तो वृक्ष की छाया मकान का काम दे सकती है, राख मेरी पोशाक का, सूखी धरती मेरे बिस्तर का और दो-चार घरों से माँगी हुई रोटियाँ भोजन का। यदि मुझे इतना मिल जाए तो मैं परम सुख मानूंगा। मैं भला रुपये-पैसे के पीछे आपको रुष्ट करूंगा ? आप मुझे राख मलकर साधु बन जाने का आदेश दें और देखिए, मैं तुरन्त आज्ञा का पालन करता हूं या नहीं। साथ ही साथ कालेज में भी बराबर काम करता रहूंगा। जो कुछ भी मुझे वहां से मिले, वह सब आपका। चाहे उसे जैसे व्यय कीजिए। मेरी स्त्री को चाहे जो दें—मैं तो आपका गरीब गुलाम हूं। मेरा काम तो केवल काम करना है और है अपने हृदय में भगवान् के लिए छोटा-सा पूजन का मन्दिर बनाना। अन्दर की शान्ति से मुझे वह सुख मिलता है जो बाह्य संसार की किसी वस्तु से नहीं प्राप्त हो सकता। ईश्वर के हेतु काम कर मैं जो शान्ति पाता हूं, वही मेरे लिए यथेष्ट वेतन है। कालेज के वेतन से मुझे कोई सरोकार नहीं। आप उसे चाहे जैसे बर्तिये। ऐसी चीज़ों की वृद्धि अथवा कमी से मैं किसी प्रकार घटता-बढ़ता नहीं। मैं तो साक्षात् आनन्द हूं।…"
ऊपर उद्धृत पत्र श्री तीर्थराम ने ५ जून, १८९६ को अपने गुरु जी को लिखा था। जैसा कि पत्र से स्पष्ट प्रतीत होता है, आज भी उनकी गुरु-निष्ठा में किसी प्रकार की कमी नहीं आई थी। मिडिल का छात्र तीर्थराम जिस दास्य भाव से गुरु के प्रति समर्पित था, कालेज का प्राध्यापक तीर्थराम भी वैसे ही समर्पित है।

इन्हीं दिनों श्री तीर्थराम ने लाहौर में सार्वजनिक व्याख्यान भी दिए, जिन्हें विद्वान् श्रोताओं ने भी सराहा।

अपने ही कालेज में उन्होंने एक व्याख्यान दिया था, जिसे सुनकर कालेज के प्रिंसिपल महोदय ने उसके स्थायी महत्त्व को आँकते हुए उसे पुस्तक रूप में छापने के लिए श्री तीर्थराम से कहा था।

प्रथम वर्ष श्री तीर्थराम ने अपने छात्रों को बड़े मनोयोग से पढ़ाया था। गणित को पढ़ाते समय वे अलौकिक आनन्द का अनुभव करते थे।

इतना करने पर भी परीक्षा-परिणाम संतोषजनक नहीं था। इस वर्ष पंजाब विश्वविद्यालय का बी० ए० का परीक्षा-परिणाम २५ प्रतिशत रहा था। यद्यपि तीर्थराम के पढ़ाए हुए छात्रों में से एक विश्वविद्यालय भर में तृतीय और दूसरा चतुर्थ रहा था, फिर भी अनेक छात्र गणित विषय में फेल थे। इससे तीर्थराम को बड़ा दु:ख हुआ।

इन दिनों श्री तीर्थराम विशेष ऊंचाई पर उगने वाले और पर्वत के उत्तुंग शिखरों से ऊंचा उठने की होड़ लगाने वाले, देवदार वृक्ष की तरह भीतर-ही-भीतर गहरे में अपनी जड़ों को जमा रहे थे जिससे ऊंचा उठने में सुविधा हो। यह तो सर्वविदित है कि जिन वृक्षों की जड़ें धरती में गहरी पैठकर रस ग्रहण नहीं करतीं वे न तो ऊंचे उठ सकते हैं और न ही आंधियों में स्थिर रह सकते हैं।

श्री तीर्थराम आत्मतत्त्व का साक्षात्कार करने की ओर निरन्तर दृढ़ता के साथ बढ़ रहे थे। इस समय उनका साधनपथ भक्तियोग था। भगवान् कृष्ण का ललित-मधुर रूप उन्हें अपनी ओर खींच रहा था। वे विरह-कातर गोपियों की तरह कृष्ण के लिए व्याकुल हो उठते थे।

वे आकाश में उमड़ते-घुमड़ते कृष्ण मेघों को देखकर भावविह्वल हो जाते और ऊर्ध्वमुख होकर उनमें अपने प्यारे कृष्ण को देखते थे।

श्री तीर्थराम के जीवन और श्री रामकृष्ण परमहंस के जीवन में हमें विलक्षण रूप में समता दिखाई देती है। श्री रामकृष्ण भी प्रारम्भ में भक्त ही थे। मां काली उनकी आराध्या थीं। बचपन में जब सर्वप्रथम उन्हें भावावेश हुआ था तो बादलों और बक-पान्ति को देखकर ही हुआ था।

एक दिन एक कथावाचक महोदय भक्त-कवि तुलसीदास के रामचरित-मानस की कथा कह रहे थे। करुण कथा को सुनते हुए तीर्थराम जोर से रो पड़े थे। श्री रामकृष्ण परमहंस भी भगवन्नामकीर्तन सुनकर भावाविष्ट हो जाते थे।

इन दिनों भक्ति-भाव के अतिरेक के कारण प्राय: तीर्थराम की आंखों से अश्रुधारा बहने लगती और गला रुंध जाता।

अपने आराध्य देव की जन्म-भूमि और लीला-भूमि को देखने के लिए श्री तीर्थराम अगस्त, १८९६ में मथुरा-वृन्दावन और गोकुल की यात्रा के

लिए गए। इस यात्रा में श्री पं० दीनदयाल जी उनके साथ थे। पं० दीनदयाल जी सनातन धर्म सभा के प्रसिद्ध उपदेशक थे। वे भाषण-कला में विख्यात थे और उनके व्याख्यान सुनने के लिए धर्मप्रेमी जनता उमड़ पड़ती थी।

श्री कृष्ण की जन्मस्थली और बाललीला-भूमि की इस यात्रा का भक्त-हृदय श्री तीर्थराम पर बड़ा सुखद प्रभाव पड़ा।

इस यात्रा से वापस लाहौर लौटने पर जब से भक्ति-योग पर व्याख्यान देने लगे तो सुनने वालों ने ऐसा अनुभव किया कि वे स्वयं भगवान् की वंशी बन गए हैं। भगवान् की ही स्वर-माधुरी उनमें प्रवाहित हो रही है। श्री कृष्ण की मुरली-माधुरी को सुनकर जैसे गोपियां मुग्ध हो जाती थीं; वैसे ही भक्ति-योग पर श्री तीर्थराम के प्रवचनों को सुनकर पंजाब की हिन्दू-जनता मुग्ध होने लगी।

सनातन धर्म सभा के तत्त्वावधान में, अमृतसर में भक्ति-योग पर श्री तीर्थराम की भाषणमाला का आयोजन भी किया गया था।

इन व्याख्यानों के प्रभाव को आंकने के लिए इतना कहना ही पर्याप्त है कि डी० ए० वी० कालेज लाहौर के स्नातक नारायणदास को ये व्याख्यान सुनने का सुयोग प्राप्त हुआ था। श्री नारायणदास आर्यसमाजी थे और जैसा कि सभी जानते हैं आर्यसमाज न केवल निराकार ईश्वर की उपासना का पक्षपाती है, अपितु साकार उपासना की निन्दा भी करता है। इसी प्रकार के विचार श्री नारायणदास के भी थे। किन्तु भक्त-हृदय श्री तीर्थराम द्वारा प्रवाहित भक्ति-योग की अमृतधारा में बरबस बहने से नारायणदास अपने को रोक नहीं सके। यही नहीं, बाद में वे तन-मन से स्वामी तीर्थराम के शिष्य भी बन गए।

वे स्वामी तीर्थराम के प्रथम और प्रमुख शिष्य बने और उनके जीवन के अन्तिम दिनों तक उनकी सेवा में तत्पर रहे। स्वामी तीर्थराम के जीवन की अनेक घटनाओं के वे साक्षी हैं और स्वामी तीर्थराम के प्रथम जीवनी-लेखक भी। यही नारायणदास जी बाद में 'नारायण स्वामी' के नाम से विख्यात हुए।

श्री तीर्थराम कृष्ण-रंग में डूबकर दिनों-दिन उज्ज्वल होने लगे। एक

बार श्री तीर्थराम ने कहा था कि ज्ञान-प्राप्ति का फल ज्ञान ही होना चाहिए। ठीक इसी प्रकार उनकी भक्ति स्वत: साध्य थी। किसी अन्य सिद्धि का साधन नहीं। उनकी अपने आराध्य श्री कृष्ण में तन्मयता इतनी बढ़ चली थी कि कभी-कभी वे भावातिरेक में सुध-बुध खो बैठते थे।

ईश्वर-निष्ठ भक्तों, साधकों और उपासकों का ऐसा विश्वास है कि उन्हें जब-जब और जहां कहीं भी पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता होगी, भगवान् स्वयं उनकी सहायता की व्यवस्था कर देंगे। बस, उन्हें तो सर्वात्मभावेन अपने को ईश्वरार्पित कर देना चाहिए। यही पर्याप्त है। शेष की व्यवस्था भगवान् स्वयं करेंगे।

इन्हीं दिनों की बात है कि द्वारका मठ के जगद्गुरु शंकराचार्य श्री माधवतीर्थजी लाहौर पधारे। सनातन धर्म सभा, लाहौर के तत्त्वावधान में उनके प्रवचनों की व्यवस्था की गई। इन दिनों श्री तीर्थराम ही लाहौर सनातन धर्म सभा के मंत्री थे। वे द्वारका मठाधीश्वर शंकराचार्य श्री माधवतीर्थ के निकट संपर्क में आए। भक्त-हृदय तीर्थराम को पहचानते उन्हें देर न लगी। भगवत्प्रेरणा के फलस्वरूप उन्होंने तीर्थराम के पारमार्थिक जीवन को उन्नत भाव-भूमि में संस्थापित करने के लिए उन्हें अद्वैतवाद के तत्त्व को अवगत कराया। 'तत्त्वमसि' 'अहम् ब्रह्मास्मि' आदि महावाक्यों का मर्म उन्होंने श्री तीर्थराम को समझाया। वेदान्तवेद्य अक्षरब्रह्म का तत्त्व जान लेने पर श्री तीर्थराम का भक्त-हृदय वेदान्त की ज्ञान-भूमि में प्रतिष्ठित हो गया।

एक बार हम फिर श्री तीर्थराम के जीवन-वृत्त की परमहंस श्री रामकृष्ण से तुलना करें।

श्री रामकृष्ण भक्ति-भाव में—मां काली की भक्ति में बार-बार तन्मय हो जाते थे और बाह्य चेतनाशून्य, सुध-बुध खोए दिखाई देते थे।

इसके बाद ईश्वरीय प्रेरणा से भैरवी ब्राह्मणी उन्हें खोजती दक्षिणेश्वर पहुंचती हैं और तांत्रिक साधना में दीक्षित करती हैं। तत्पश्चात् उनके संन्यास दीक्षागुरु श्रीमान् तोतापुरी जी का आगमन होता है और वे उन्हें अद्वैत की दीक्षा देते हैं।

वेदान्त के दो अर्थ हैं: वेद का अन्तिम भाग और वेद का सार-भाग।

उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र (वेदान्तदर्शन) ये प्रस्थानत्रयी के नाम से प्रसिद्ध हैं और भारतीय तत्त्वदर्शन की मूलभित्ति हैं।

वैसे श्री तीर्थराम का वेदान्त की भूमिका में यह अवस्थान आकस्मिक नहीं था। इससे पूर्व हम उन्हें 'योगवासिष्ठ' और श्रीमद्भगवद्गीता का स्वाध्याय, मनन-चिन्तन करते देखते हैं। और ये दोनों ही ग्रंथ वेदान्त के सारभूत माने जाते हैं।

अब श्री तीर्थराम आत्म-साक्षात्कार के लिए अपना अधिकाधिक समय देने लगे।

"आत्मा वा रे ज्ञातव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यः निदिध्यासितव्यः" इस उपनिषद्-वाक्य का अनुसरण वे करने लगे।

अब तीर्थराम के स्वाध्याय का विषय बन गया—अद्वैत वेदान्त। अब मथुरा-वृन्दावन की अपेक्षा उन्हें उत्तराखण्ड की यात्रा करने में उत्साह होने लगा। श्री तीर्थराम आद्य शंकराचार्य द्वारा की गई उपनिषद्, गीता और वेदान्त दर्शन की व्याख्याओं का अध्ययन करने लगे। इन दिनों तीर्थराम की यह सुनिश्चित और दृढ़ धारणा बन गई थी कि वेदान्त-प्रतिपादित सर्वव्यापक ब्रह्मतत्त्व ही एकमात्र सत्य है। इन दिनों उनका कालेज के कुछ घंटों से अतिरिक्त शेष समय ध्यान और धारणा में ही व्यतीत होने लगा। इन्हीं दिनों वियोग-संज्ञक योग में अवस्थित वे मायामय जगत् का विवेक द्वारा प्रत्यक्ष करके 'अभय' पद पर आरूढ़ हुए थे। गीता में भगवान् कृष्ण ने 'अभय' को आध्यात्मिक जीवन की पहली सीढ़ी कहा है। इस पर चढ़े बिना उर्ध्व स्थिति की उपलब्धि संभव नहीं है। वे कहा करते थे : मायामय विश्व का त्याग करने पर वे आपके दास बन जाएंगे।

पं० हीराचन्द गोस्वामी, जो तीर्थराम के प्राध्यापक बन जाने से अपने को सुखी, गौरवान्वित और आर्थिक दृष्टि से निश्चिन्त अनुभव कर रहे थे, पुत्र की वृत्तियों को संसार-विमुख होता देखकर फिर त्रस्त व शंकित हो उठे। और उनकी आशंका ठीक ही थी। इस दृष्टि से भी कि पुत्र राम पर उनकी जो आशाएं केन्द्रित थीं, वे निराशा में परिवर्तित होने वाली थीं और इससे यह सत्य एक बार फिर उद्घाटित होने वाला था कि सभी सांसारिक सुख मिथ्या हैं, क्षणस्थायी हैं और नाशवान् हैं। पुत्र श्री राम

पर अपनी आशाओं को केन्द्रित करने के कारण महाराज दशरथ को भी अन्त में मोह हुआ था। पुत्र राम के मोह को छोड़कर घट-घट वासी राम में अपनी आशाओं-आकांक्षाओं को केन्द्रित करने पर ही सच्चे सुख की प्राप्ति संभव है। और जब श्री हीरानन्द गोस्वामी ने अपने मन की आशंका श्री तीर्थराम को लिखी तो उन्होंने जो पत्र लिखा वह अपने कथ्य के कारण श्री तीर्थराम के विशाल पत्र-संग्रह में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

२५ अक्तूबर, १८९७ को लिखा यह पत्र ज्ञान की गागर में सागर की तरह है।

"पूज्य पिताजी, आपको बारम्बर नमस्कार। आपके पत्र आए और अपने साथ आनन्द और परम सन्तोष भी लाए। आपके पुत्र तीर्थराम का यह शरीर तो अब बिक गया, वह ईश्वर के हाथों बेच डाला गया। वह शरीर अब उसका नहीं। आज दीपावली है, मैंने अपना शरीर जुए में हार दिया और बदले में परम पिता परमात्मा को जीत लिया। अब आपको जिस चीज़ की आवश्यकता हो, मेरे स्वामी से मांगिए। वह स्वयं आपको देगा अथवा मुझे आपके पास भेजने की प्रेरणा करेगा। पर आप एक बार पूर्ण विश्वास के साथ उससे मांगिए तो सही।

"१९-२० दिन हुए, परमात्मा ने सब काम, सारे कर्तव्य सारे ऋण चुकाने का पूरा भार अपने ऊपर ले लिया है। आपके काम भी वह इसी प्रकार क्यों न करेगा? आपको धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए। जैसी उसकी इच्छा होती है, उसी प्रकार सब मनुष्यों को काम करना पड़ता है। आत्म-साक्षात्कार के जीवन का धन ही तो हम ब्राह्मणों का सर्वोपरि धन है तो इस भीतरी सम्पत्ति को छोड़कर बाहरी सम्पत्ति के पीछे दौड़ना हम लोगों को कैसे शोभा दे सकता है! एक बार तो अपनी अन्तरात्मा के आनन्द का स्वाद चखिए।"

पुण्यात्मा जीवनों का अध्ययन-मनन करने पर हमें स्पष्ट प्रतीत होता है कि श्रुति भगवती के आदेश और उपदेश तत्त्वसाधकों के जीवन में प्रत्यक्ष होते हैं और जन-साधारण के लिए स्पष्ट जीवित-जागृत उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इसके साथ ही 'ज्ञानहिं भक्तिहिं नहिं कुछ भेदा' को भी हम प्रत्यक्ष देख पाते हैं।

भक्तिमती मीरा अपनी इसी मनोदशा का चित्रण करते हुए एक पद में कहती हैं : "माई म्हें गोविन्दो लीनो मोल।" एक दूसरे पद में वे मस्त हो गाती हैं : "जनम-जनम की पंजी पाई जग में सभी-खोवायो।" जग को खोकर जगत् पिता को पा लेना ही जीवन की सार्थकता है।

श्रुति भगवती कहती है :

ब्राह्मणस्य शरीरोऽयं क्षुद्रकार्याय नेष्यते।
कृच्छ्राय तपसे चैव प्रेत्यानन्त सुखाय च।।

अर्थात् ब्राह्मण का यह शरीर क्षुद्र कार्यों के लिए नहीं है।

यह तो तपस्या के लिए और परलोक में अनन्त सुख प्राप्त करने के लिए है।

ठीक यही बात हम श्री तीर्थराम को उपरिलिखित पत्र में कहते देखते हैं और कहते ही नहीं, करते भी देखते हैं।

लगभग दस मास बाद का उनका एक दूसरा उद्बोधक पत्र भी देखिए।

भगत धन्नामल जी भी अपने भरण-पोषण के लिए श्री तीर्थराम पर निर्भर थे। वे योग-भ्रष्ट स्थिति में थे। उन्होंने तीर्थराम को सांसारिक कर्त्तव्यों के निर्वाह के लिए लिखा था, जिसके उत्तर में श्री तीर्थराम ने लिखा :

(२३ अगस्त, १८९८, यह पत्र ऋषिकेश से धन्नामल जी को लिखा गया था।)

"आपने अपने पत्र में मुझे घर लौटने का उत्साह दिलाया है। आपका पत्र गंगा की बहती धारा में विसर्जन कर दिया गया। आश्चर्य ! आप भी मुझसे यह पूछते हैं कि क्या मुझे अपने कर्त्तव्यों का पालन न करने के कारण कोई दुःख नहीं होता ?

दुःख किस बात का ?

इन चीज़ों की उत्पत्ति कहां से हुई, कौन जाने !

इन चीज़ों का अन्त कहां होगा, कौन जाने !

जो कुछ थोड़ा-सा पता है, वह केवल बीच ही बीच में—वर्तमान में और सब कुछ अज्ञात ही अज्ञात है। तब दुःख किस बात का ? और लोग क्या कहेंगे ? उत्तर में यह उर्दू का शेअर काफी है :

अपनी पगड़ी से अपना ही कफन
बना मैं आया हूं कूचे यार में।
ताना लगा ले जिसका जी चाहे,
मुझे ऐसे-वैसों की परवाह भी नहीं।।

फिर आपने आज्ञा-पालन का आदेश दिया है। मैं आपकी आज्ञा ही का पालन कर रहा हूं। अपने शरीर के पंचनद में से द्रुतगति के साथ भगवान् के मन्दिर की ओर बढ़ रहा हूं। मैं तो सत्य के साथ घुलमिल जाना चाहता हूं।

आधी रात होने वाली है। पास में न कोई आदमी है और न कोई भूत-प्रेत, भीतर निजानन्द के उफान की धूमधाम है और बाहर माता जाह्नवी के प्रवाह का संगीत। मेरे भीतर शान्ति, शान्ति, शान्ति का महासागर है और मेरे बाहर कल्याण का साम्राज्य। यह मेरे मिलन की रात्रि है, इसे अन्धेरी कौन कहता है—यह तो मिलन की घड़ी ने गोपनीय संसार के मुख पर काला परदा डाल रखा है।

मेरा मतलब है कि मिलन की रात्रि में भीतर और बाहर दोनों लोक घुलकर बह गए हैं। नीचे से अमृत का नद बह रहा है। ऐसे समय में मुझे सांसारिक सुखों की याद दिलाना! राम! राम!!

मेरे घर वालों से कह दीजिए कि यदि मुझसे मिलने की इच्छा है तो केन्द्र पर आकर मिलें, जहां सब मिलते हैं, न कि परिधि पर, जहां कोई नहीं मिल सकता!"

यह केन्द्र और परिधि श्री तीर्थराम का रहस्यवादी प्रतीक हैं। केन्द्र है ब्रह्मसत्ता और परिधि है, उसका मायामय जगत्-विस्तार।

० ० ०

१८९७ ई० के प्रथम चरण में चार वर्ष के विदेशवास के बाद स्वामी विवेकानन्द स्वदेश लौट आए थे और रामकृष्ण मिशन की स्थापना हुई थी। स्वामी जी के गिरते स्वास्थ्य के कारण वे जलवायु परिवर्तन के लिए अलमोड़ा गए थे और वहां अढ़ाई मास बिताने के पश्चात् बरेली, अम्बाला, अमृतसर, रावलपिण्डी, श्रीनगर पधारे थे। वहां से लौटते समय वे रावल-पिण्डी, जम्मू, स्यालकोट होते हुए ५ नवम्बर, १८९७ को लाहौर आए थे।

लाहौर में सनातन धर्म सभा की ओर से उनके स्वागत और व्याख्यान की व्यवस्था की गई थी।

सनातन धर्म सभा की ओर से इस सारे कार्यक्रम का आयोजन श्री तीर्थराम जी की देखरेख में हो रहा था। यहां स्वामी विवेकानन्द जी के तीन व्याख्यान हुए थे। स्वामी जी ध्यानसिंह की हवेली में ठहरे हुए थे। उनके लाहौर पधारने पर श्री तीर्थराम को उनसे सम्पर्क स्थापित करने का अच्छा अवसर मिला।

स्वामी विवेकानन्द ने अपने विदेश-प्रवास में जैसे अमेरिकावासियों को अपनी तपःपूत वाणी से चकित-मुग्ध किया था, वैसे ही लाहौर के जन-समुदाय को भी। स्वामी विवेकानन्द जी जब वेदान्त पर बोलते थे लगता था जैसे स्वयं मूर्तिमन्त वेदान्त अपना साक्षात्कार करा रहा हो, परिचय दे रहा हो। उनका प्रभाव अकथनीय था।

श्री तीर्थराम जी ने एक दिन शिष्यों सहित स्वामी विवेकानन्द जी को भोजन के लिए निमंत्रित किया। इस अवसर पर भी उन्हें स्वामी जी से वेदान्त पर व्यक्तिगत रूप से चर्चा करने का सुयोग मिला। स्वामी विवेकानन्द ने देख लिया कि प्राध्यापक तीर्थराम वेदान्त के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकने की क्षमता से सम्पन्न हैं। स्वामी जी की प्रेरणा से तीर्थराम जी का भाव और भी पुष्ट हो गया। उनके भीतर का प्रच्छन्न संन्यासी प्रकट होने के लिए मचल उठा। अभी तक जो संन्यास का बीज फूटकर अंकुर बन गया था वह धरती की सतह के ऊपर प्रकट होने के लिए, ऊपर के ढेले को फोड़ने के लिए प्रयत्नशील होने लगा।

विदा के समय श्री तीर्थराम ने अपनी घड़ी स्वामी विवेकानन्द जी को भेंट की। स्वामी विवेकानन्द जी ने उसे स्वीकार करते हुए और फिर श्री तीर्थराम की जेब में डालते हुए वेदान्त की भाषा में कहा, "मित्र! इस घड़ी का उपयोग मैं इसे इस जेब में ही रखकर करूंगा।" स्वामी विवेकानन्द ने श्री तीर्थराम के निजी पुस्तकालय से एक पुस्तक अपने लिए ली थी।

स्वामी रामतीर्थ के द्वितीय शिष्य सरदार पूरनसिंह जी ने, जो लाहौर के निवासी थे और १८९७ में जब स्वामी विवेकानन्द लाहौर आए थे, उस

समय वहां एफ० ए० के छात्र थे, स्वामी विवेकानन्द जी के लाहौर में दिए गए प्रवचनों और श्री तीर्थराम पर उनके जादुई प्रभाव का विस्तृत वर्णन 'स्वामी राम जीवन कथा' में किया है।

श्री तीर्थराम के मन में विरक्त, तेजपुंज संन्यासी विवेकानन्द को देखकर, स्वयं भी वैसा जीवन अंगीकार करने की भावना जागृत हुई हो तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। वे श्री जगद्गुरु शंकराचार्य जी के आगमन से वेदान्त की भूमिका में आरूढ़ हो चुके थे और उसे ही जीवन का चरम सत्य मानते थे। उसी वेदान्त के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने मन में संकल्प किया होगा, यह कल्पना करना जरा भी असंगत नहीं है। आप लोक में देखते ही हैं कि जब किसी रोगी का रोग किसी औषधिविशेष से दूर हो जाता है तो वह बड़े उत्साह के साथ उसी रोग के दूसरे रोगियों को भी उसी औषधि के सेवन की सलाह देता है। फिर यदि तीर्थराम ने भव-रोग की रामबाण औषध वेदान्त का प्रचार लोकोपकार के लिए करने की बात सोची तो ठीक ही किया।

स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ—इन दोनों महात्माओं की तुलना करते हुए सरदार पूरनसिंह जी ने लिखा है : "हाँ, एक बात है, स्वामी राम की भाषा में वह सुघड़ता और प्रौढ़ता नहीं है जो स्वामी विवेकानन्द की भाषा में देखी जाती है, और न उनमें वक्तृत्व-कला का वह जोर और सबको उखाड़ देने वाला तर्क और व्यंग्य ही है, जो स्वामी विवेकानन्द में था। वे शरीर से भी स्वामी विवेकानन्द के समान बलिष्ठ न थे, किन्तु राम भी उनसे बढ़े-चढ़े थे अपने अनन्त ज्ञान-प्रेरित और समाधिस्थ आह्लाद में, अज्ञात चैतन्य की उस दमक में जो सदा उनके मस्तक पर खेला करती थी, अपने संगीत की मधुरता में, भक्तिमय कन्या सुलभ लज्जाशील सुन्दर सुकुमारता में, हृदय को द्रवीभूत करने वाले उस भावोद्रेक में, जिसने उनके भीतर से संसार के सभी विचार चुन-चुन बाहर निकाल फेंके थे और जिसके फलस्वरूप वे बार-बार अपने मूक आह्लाद की समाधि में डूब जाते थे। स्वामी विवेकानन्द उनसे बढ़कर दार्शनिक, बढ़कर वक्ता, बढ़कर नरशार्दूल संन्यासी थे और स्वामी राम उनसे बढ़कर थे अपने गंभीर समाधि-जन्य परमानन्द में, जो एक अटल आधार शिला की भांति उनके प्रफुल्ल, मधुर

और काव्यशील संचारण में, उनके सहानुभूतिपूर्ण सदय व्यवहार में, अपनी परिस्थिति के साथ पूर्ण शान्तिमय मस्ती में जो सदा उनका पल्ला पकड़े रहती थी। फिर दोनों महात्माओं में बौद्धिक सम्बन्ध इतना अपूर्व और इतना व्यापक था कि हम दोनों को अपनी संसार-यात्रा में वेदान्तविषयक बिल्कुल एक-सा सन्देश देते हुए पाते हैं।"

दो महापुरुषों की तुलना करना या उनमें से किसी को कम और किसी को अधिक दिखाना न सरदार पूरनसिंह जी का उद्देश्य था और न हमारा ही है। न सांसारिकों में महात्माओं के लोकोत्तर जीवन का नाप-तोल करने की सामर्थ्य संभव है। वेदान्त की भाषा में उनमें से न कोई कम था और न कोई अधिक। वे तो पूर्ण थे।

पूर्णमदः पूर्णमिदम् पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

फिर हम सांसारिक लोग अपनी नातिदूरगामिनी दृष्टि से ही सबकी नाप-तोल करने के अभ्यस्त हैं।

वेदान्त-वेद्य ब्रह्म की सर्वव्यापक सत्ता की ओर श्री तीर्थराम को उन्मुख करने में निमित्त स्वरूप हम भले ही द्वारकापीठाधीश्वर श्री जगद्गुरु शंकराचार्य जी को या वेदान्तकेसरी स्वामी विवेकानन्द को मानें किन्तु यह सर्व-विदित तथ्य है कि यह उनके भीतर-ही-भीतर घटित होने वाले आध्यात्मिक विकास का अवश्यंभावी परिणाम था। इसके कारण बाहर की अपेक्षा भीतर ही अधिक थे। इस बात के स्पष्ट प्रमाण के रूप में हम उनके प्रारम्भिक जीवन की घटनाओं को ले सकते हैं। वे पल-पल और पग-पग अपने जीवनलक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहे थे।

फरवरी, १८९८ में श्री तीर्थराम ने लाहौर में 'अद्वैतामृतवर्षिणी' सभा की स्थापना की। इस सभा का उद्देश्य था—वेदान्त का प्रचार-प्रसार करना। श्री तीर्थराम ध्यान और धारणा द्वारा अपनी शक्ति को विकसित-केन्द्रित करते हुए उस स्थिति को प्राप्त कर रहे थे जिसमें सुख-दुःख में समत्व-दृष्टि हो जाती है और मन की एकाग्रता पर बाहरी विक्षेपों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस स्थिति को पंजाब के एक अन्य महापुरुष नानक देव जी ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया है :

सुख दुःख दोनों समकर जाना और मान अपमाना।
हर्ष और शोक से रहे अतीता तिन जग तत्त्व पछाना।।

इन दिनों तीर्थराम ध्यान-उपासना और वेदान्त-चर्चा में अधिकाधिक समय व्यतीत करने लगे। उन्हें जीविकोपार्जन के लिए कालेज में बिताया जाने वाला समय अखरने लगा। वे कालेज में गणित पढ़ाते समय भी यथावसर अंग्रेज़ी, उर्दू और पंजाबी के काव्य के उदाहरण देकर विषय को रोचक बना देते थे। उनके द्वारा वेदान्त का प्रतिपादन करने पर ईसाइयत से प्रभावित छात्र भी समझने लगे थे कि हिन्दूधर्म श्रेष्ठ धर्म है। इससे क्रिश्चियन कालेज के प्रबन्धकों को आपत्ति होना स्वाभाविक था। कारण यह है कि भारत में शिक्षा, स्वास्थ्य या अन्य समाज-कल्याण के कार्यों में लगी हुई ईसाई संस्थाओं का कहीं-कहीं प्रच्छन्न और कहीं-कहीं प्रकट महत्त्वपूर्ण उद्देश्य रहा है—हिन्दुओं का धर्म-परिवर्तन करके उन्हें ईसाई बनाना और श्री तीर्थराम के कारण उन्हें अपने कार्य में रुकावट हो रही थी। इसलिए कालेज के व्यवस्थापकों ने निश्चय किया कि तीर्थराम को कालेज की नौकरी से अलग कर दिया जाए। उन्होंने श्री तीर्थराम को औपचारिक रूप से सूचित कर दिया कि वे कहीं अन्यत्र काम खोज लें क्योंकि इस कालेज में उनका स्थान ग्रहण करने के लिए अमरीका से एक सज्जन आ रहे थे।

यद्यपि श्री तीर्थराम ने जनवरी, १८९९ में त्याग-पत्र दे दिया था तथापि वे शिक्षा-सत्र की समाप्ति अप्रैल, १८९९ तक कुछ समय वहां पढ़ाते रहे।

संयोग की बात कि उन्हें लाहौर के ओरियण्टल कालेज में प्रतिदिन दो घंटे पढ़ाने का कार्य मिल गया।

इन्हीं दिनों अर्थात् फरवरी, १८९९ में श्री तीर्थराम की धर्मपत्नी शिवदेवी ने मुरालीवाला में दूसरे पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम ब्रह्मानन्द रखा गया। इस वर्ष का ग्रीष्मावकाश श्री तीर्थराम ने काश्मीर में बिताया और अमरनाथ गुफा की यात्रा की। इस यात्रा में श्री तीर्थराम के शरीर पर मात्र एक धोती थी और एक चादर।

अमरनाथ की गुफा में बारहों मास बर्फ जमी रहती है और कड़ाके की सर्दी पड़ती है। मार्ग में भी कई जगह बर्फ पर चलना पड़ता है।

सन् १८९९ में उन्होंने एक 'अलिफ' नामक पत्र निकालना प्रारम्भ किया। यह पत्र उर्दू में था और इसका नाम फारसी के प्रथम अक्षर 'अलिफ' पर रखा गया था। अपने प्रेस का नाम भी उन्होंने आनन्द प्रेस रखा।

पर १९०० ई० के जुलाई मास में वे लाहौर छोड़कर सदा-सदा के लिए उत्तराखण्ड में चले गए।

उनके लाहौर छोड़ते समय उनके मित्र, शिष्य और प्रशंसक बड़ी संख्या में उन्हें विदाई देने लाहौर रेलवे स्टेशन पर पहुंचे। इस अवसर पर विदाई देने आए हुए लोगों ने तीर्थराम द्वारा रचित 'अलविदा' नामक उर्दू गज़ल गाई जो कि इस अवसर के लिए सब प्रकार से उपयुक्त थी।

गज़ल इस प्रकार है :

अलविदा मेरी रियाज़ी[1]! अलविदा।
अलविदा, ऐ प्यारी रावी! अलविदा।
अलविदा ऐ दोस्तो-दुश्मन! अलविदा।
अलविदा ऐ शीत-उष्ण! अलविदा।
अलविदा ऐ दिल! खुदा! ले अलविदा।
अलविदा राम! अलविदा-ए अलविदा।

वे इस मायामय विश्व के परित्याग का दृढ़ निश्चय कर चुके थे। सारे व्यक्तिगत सम्बन्धों, व्यष्टि को—वे समष्टि में विलीन कर चुके थे। अब व्यक्ति के क्षुद्र अहं के लिए वहां स्थान ही कहां रह गया था?

श्री तीर्थराम बड़े भावुकहृदय थे। बड़ा कोमल था उनका हृदय। पर हृदय आज वज्र कठोर हो गया था। यही तो महापुरुषों के हृदय का लक्षण है। वज्र से कठोर और पुष्प से कोमल। श्री तीर्थराम स्वभाव से ही एकान्तप्रिय थे। छात्रावस्था में तो उनका यह एकान्तप्रेम सीमा से बढ़ चला था। चिन्तन-मनन की ओर उनकी प्रवृत्ति थी जो विकसित होकर ध्यान-धारणा में रम चली थी। उत्तराखण्ड और काश्मीर में वे अरण्यवास भी करते रहे थे। पर वे एक दिन सारी माया-ममता को छोड़कर इस तरह चले

---

१. गणित

जाएंगे, इसकी कल्पना किसी को नहीं थी।

वे भक्त-हृदय थे—पर-दुःख-कातर। वे करुण-प्रसंगों में विगलित हो उठते थे।

उनकी विदाई के समय विदाई देने वालों की आंखें गीली थीं, गले रुंधे हुए थे, वे अलविदा गज़ल गा तो रहे थे, पर गाई कहां जा रही थी!

संन्यास

श्री तीर्थराम के हृदय में संन्यास का बीज, उनके आंसुओं से सींचा जाकर अंकुर बनने की तैयारी कर रहा था और सूर्य के प्रकाश में प्रकट होने के लिए मचल रहा था।

अपने छात्रों के साथ उनका व्यवहार लोकोत्तर प्रकार का था। वे उन्हें (प्रत्येक को) कृष्ण कहकर पुकारते थे और कहते थे, "प्यारे कृष्ण! तू तो सब कुछ जानता है, फिर मैं तुझे क्या बताऊं?" यदि फिर भी कोई छात्र कहता था कि उसे समझा दें तो वे फिर कहते थे, "ओ प्यारे कृष्ण! तू तो सब कुछ जानता है।" और इस प्रकार वे उसके भीतर की शक्ति को जगा देते थे, और उनकी अलौकिक प्रेरणा से छात्र के हृदय में समस्या का समाधान आ उपस्थित होता था। वह छात्र श्यामपट्ट पर उस प्रश्न को हल करके दिखा देता था।

एक दिन वे मिशन कालेज के प्रिंसिपल के सामने देवदूत जैसी भाव-भंगी में जा खड़े हुए थे और कहा था, "तुम! तुम ईसा की पूजा करते हो! क्या तुमने कभी उसे अपनी आंखों से देखा है? नहीं, तुमने कभी नहीं देखा! लो! लो! देखो! ईसामसीह तुम्हारे सामने खड़ा है।"

वे भगवान् के नाम की प्रेम-सुरा पीकर एकदम मस्त हो चुके थे। वे आनन्द का प्याला पीकर निर्भय हो गए थे। उपनिषद् में ऐसे ही प्रेमानन्दी सन्तों के लिए कहा गया है: 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्च न।'

(आनन्द ब्रह्म को जानने वाले विद्वान् किसी से नहीं डरते)।

१८९९ ई० के अन्तिम चरण में श्री तीर्थराम रोग से ग्रस्त हो गए। उनका पेट बाल्यावस्था से ही गड़बड़ रहता था। भयंकर उदर शूल के कारण एक रात वे अचेत हो गए। उनकी सेवा-टहल करने वालों को इसकी भी शंका होने लगी कि राम जीवित भी हैं या नहीं। बहुत देर बाद उनकी चेतना लौट आई तो वे एकदम पूर्ण स्वस्थता का अनुभव करने लगे। उन्होंने इसे अलौकिक शक्ति का एक संकेत समझा और इसका यह अर्थ लगाया कि मौत के मुंह से वापस भेजने में परमात्मा की यही इच्छा है कि मैं शेष जीवन को उसी के कार्य के लिए सौंप दूं। उनका यह भाव दृढ़तर हो गया।

श्री तीर्थराम आन्तरिक प्रेरणा के वशीभूत हो कभी-कभी विलक्षण व्यवहार करते थे। इन दिनों उनकी प्रबल इच्छा हुई कि वे 'सागर' का दर्शन करें।

'सागर' को प्रतीक बनाकर उपनिषद्, गीता आदि ग्रन्थों में कई बार स्मरण किया गया है। गीता में अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए भगवान् कृष्ण ने कहा है : "सरसामस्मि सागरः" ॥१०।२४॥ (मैं सरिताओं में सागर हूं)। इसी प्रकार स्थितप्रज्ञ के लक्षणों में कहा है :

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥२।७०॥

(जैसे सब ओर से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में अनेक नदी-नद समा जाते हैं, वैसे ही जिस स्थिरमति पुरुष में संपूर्ण सांसारिक कामनाएं किसी प्रकार का मनोविकार उत्पन्न किए ही समा जाती हैं, वही पुरुष शान्ति को प्राप्त करता है, कामनाओं को चाहने वाला नहीं।)

उपनिषद्-वचन हैं :

यथा नद्यः स्यन्दमाना समुद्रे अस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय,
तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।

मुण्डक ८।२।३

भावार्थ है : जैसे बहती नदियाँ अपना नाम-रूप छोड़कर समुद्र में समा

जाती हैं, वैसे ही ब्रह्मवेत्ता विद्वान् नाम-रूप को छोड़कर दिव्य परात्पर पुरुष में समा जाता है। बस फिर क्या था, तीर्थराम सागर दर्शनों के लिए चल पड़े। मार्ग के सक्खर आदि स्थानों को देखते हुए वे कराची पहुंचे। ईश्वर की विभूति महासागर के दर्शन किये।

जब श्री तीर्थराम ने ओरियंटल कालेज के प्रोफेसर पद से त्याग-पत्र दिया तो लोग इनके इस काम की अपने-अपने ढंग से आलोचना करने लगे थे। अपने त्याग-पत्र में उन्होंने लिखा था : "राम बादशाह अब किसी का नौकर नहीं रह सकता, केवल उस परमात्मा के सिवा।"

विश्वविद्यालय के अधिकारी कहने लगे, "इसका दिमाग खराब हो गया है।" इस कथन पर टिप्पणी करते हुए डा० इकबाल ने, जो उस समय वहां अध्यापक थे, कहा था—"तीर्थराम को यदि पागल माना जाए तब तो समझदारी नाम की चीज कहीं रह नहीं जाती।"

यह स्वाभाविक है कि जब महात्मा पुरुष संसार के सुख-वैभव को लात मारकर परमानन्द को पा लेता है तो संसार-माया से मोहित जीव उसे पागल कहते हैं।

वैसे तो हिन्दूधर्म में सामान्य जनों के लिए चार वर्णों का विधान करते समय प्रत्येक आश्रम में प्रवेश के लिए आयु निश्चित कर दी गई है और संन्यास आश्रम में प्रवेश के लिए ७६वें वर्ष का निर्देश है। पर यह व्यवस्था उन्हीं लोगों पर लागू होती है, जो सोपान-क्रम से मानसिक विकास प्राप्त करते हैं और जो भगवान् के तेजोंऽश से उत्पन्न हैं, उनके लिए—

यदहः विरमेत् तदह प्रव्रजेत्।

(जिस दिन संसार से वैराग्य हो जाए, उसी दिन संन्यासी हो जाए।) का नियम है।

युवा स्यात् साधुयुवाध्यापकः आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठः।

तैत्तिरीय २।८

(युवक को साधु, अभ्यासशील, आशावान् दृढनिश्चयी और बल-सम्पन्न होना चाहिए।) यह उपनिषद्-वाक्य है।

स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में :

"इसलिए मैं कहता हूं कि अभी इस भरी जवानी में, इस नये जोश के

जमाने में काम करो। काम करने का यही समय है। इसलिए अभी अपने भाग्य का निर्णय कर लो और काम में लग जाओ; क्योंकि जो फूल मसला नहीं गया है, जो ताजा है और सूंघा नहीं गया है, वही भगवान् के चरणों पर चढ़ाया जाता है और उसे ही भगवान् ग्रहण करते हैं।"

ऐसी ही लोकोत्तर भावनाएं रही होंगीं, जिनसे अनुप्राणित होकर श्री तीर्थराम ने पुत्र-कलत्र और बन्धु-बान्धवों की माया-ममता त्यागकर संन्यासी होने का निश्चय किया होगा। हिमालय की शान्ति का सम्मोहन और गंगा के कल-कल निनाद का संगीत उन्हें पुकार रहा था।

गंगा और हिमालय भी तो गीता में वर्णित ईश्वर की दिव्य विभूतियां हैं। संभवत: गंगा और हिमालय की कन्दराएं राम बादशाह के मुख से ओ३म् की मधुर-दिव्य ध्वनि सुनने को आतुर थीं और इसीलिए राम बादशाह वहां गए थे। यह भी संभव है कि पूर्वजन्म का कोई योग-भ्रष्ट साधक ही राम बादशाह के रूप में अवतरित हुआ था और इसके पूर्वजन्म के संस्कार उद्बुद्ध हो चुके थे। पूर्वजन्म की साधना-भूमि रम्य उत्तराखण्ड और पुण्यतोया गंगा उसे अधूरी साधना को पूरा करने के लिए बुला रहे थे।

०　　　०　　　०

लाहौर की धर्म-प्राण जनता, शिष्यों और मित्रों से अब भावभीनी विदाई लेकर तीर्थराम नारायण तथा दल के साथ पावनतीर्थ हरिद्वार पहुंचे। यहां से गंगोत्री के लिए प्रस्थान किया और मार्ग में टिहरी ठहरे। मार्ग में व्यवस्थापक का कार्य श्री नारायण कर रहे थे। जो कुछ रुपया-पैसा था, उन्हीं के हवाले था। गंगोत्री पहुंचकर श्री रामतीर्थ ने ('तीर्थराम' नाम के शब्दों को ही आगे-पीछे करके 'रामतीर्थ' नाम बना लिया गया था) कहा, "तुम्हारे पास जितने भी रुपये-पैसे हैं, उन्हें गंगा की धारा में बहा दो। हमें एक मात्र भगवान् के सहारे ही अपने जीवन को छोड़ देना चाहिए। अब वे हमें जैसे रखें, वैसे ही रहेंगे।

त्वदीयां वस्तुं गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।।

(प्रभु ! तेरी दी हुई वस्तु तुझे ही समर्पित करता हूं)"

तीर्थराम के साथ उनकी पत्नी, ब्रह्मानन्द और मदनमोहन दोनों पुत्र

तथा श्री नारायण थे।

दल के प्रत्येक सदस्य को अलग-अलग झोपड़ियां दी गईं, जिससे निर्विघ्न ध्यान-धारणा हो सके। ईश्वरार्पित मन-बुद्धि होकर उन्होंने अपना संन्यास जीवन प्रारम्भ किया। उनका कहना था, यदि ईश्वरेच्छा हमें जीवित रखने की हुई तो हम जीवित रहेंगे अन्यथा ईश्वर-निष्ठा के बिना जीवित रहने की अपेक्षा मृत्यु का वरण करना ही श्रेष्ठ है।

राम की एकान्त ईश्वर-शरणागति और ईश्वर-निष्ठा को जैसे सत्य प्रमाणित करने के लिए ही काली कम्बली क्षेत्र के बाबा श्री रामनाथ यहां पधारे। जब उन्हें रामतीर्थ के दलसहित ठहरे होने का समाचार मिला तो उन्होंने स्थानीय दुकानदार को आदेश दिया कि श्री रामतीर्थ और उनके साथियों को प्रतिमास दस रुपये की खाद्यसामग्री दे दिया करे, जिसके मूल्य का भुगतान क्षेत्र की ओर से कर दिया जाएगा।

गीता में भगवान् कृष्ण ने अपने भक्तों को एक आश्वासन दिया हुआ है:

'मैं' अपने भक्तों के योग-क्षेम का उत्तरदायित्व लेता हूं'[1]। इस दल के सदस्यों ने जब देखा कि भगवान् उनके योग-क्षेम की चिन्ता कर रहे हैं तो उनकी भगवद्-निष्ठा और भी दृढ़ हो गई।

पुण्यतोया भगवती गंगा का तटवर्ती प्रदेश, ऋषियों और मुनियों की साधना-भूमि उत्तराखण्ड, शान्त और रम्य एकान्त, सात्त्विक वृत्तियों के स्फुरण और संवर्द्धन के लिए सहस्राब्दियों से सुप्रतिष्ठित है।

दुर्निग्रह और चंचल मन यहां अभ्यास और वैराग्य द्वारा विषदन्तहीन सर्प की तरह निस्सत्त्व हो जाता है। फिर राम तो पहले ही पूर्व जन्म के संस्कारों से ही और इस जन्म के जीवनारंभ से ही भक्त, ज्ञानी और योगी थे। दैवीसम्पद् में उनका अवतरण हुआ था। वे मुमुक्षु साधक थे। यहां पहुंचकर तो निवातस्थ दीपशिखा की भांति उनका मन निश्चल और 'स्व'-रूप में स्थित हो गया। 'स्व'-स्थ हो गया।

इन दिनों श्रीराम आनन्दसागर में डुबकियां लगाने लगे थे। उनकी मनःस्थिति की झलक उनके द्वारा रचित काव्य-पंक्तियों में मिलती है।

---

१ 'तेषां नित्याभियुक्तानां योग-क्षेमं वहाम्यहम्।'

श्रीराम ने उसे प्राप्त कर लिया था, जिसके बाद कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रहता और वे वहां पहुंच गए थे जहां इस संसार के द्वन्द्व—सुख-दुःख, लाभ-हानि, मान-अपमान—सब समाप्त हो गए थे। मोह नष्ट हो गया था और सम्यक्स्मृति प्राप्त हो गई। यह ब्राह्मी स्थिति थी जिसे प्राप्त कर लेने के बाद समस्त भय समाप्त हो जाते हैं।

यहां कुछ दिन रहने के पश्चात् एक रात श्री राम अपने साथियों को सोता हुआ छोड़कर चुपचाप उत्तर काशी की ओर चल पड़े।

अन्तर्यामी की बलवती प्रेरणा से श्री राम ने ऐसा निश्चय किया होगा। वे कुछ दिन उत्तरकाशी रहकर फिर गंगोत्तरी लौट आए थे।

श्री तीर्थराम की पत्नी का स्वास्थ्य गिर रहा था। अतः श्री राम ने उन्हें वापस मुरालीवाला भेजने का निश्चय किया। उनके साथ ही छोटे पुत्र ब्रह्मानन्द को भी वापस भेज दिया। बड़े पुत्र मदनमोहन को टिहरी के राजकीय विद्यालय में प्रविष्ट करा दिया।

लगता है कि श्री राम ममता के बन्धनों को खोल रहे थे। पत्नी और छोटे पुत्र को वापस भेजना बन्धन को ढीला करना ही था। वे औपचारिक रूप में संन्यासी बनने की तैयारी कर रहे थे। यहां हम संन्यास के सम्बन्ध में कुछ वर्ष पूर्व अपने गुरु को लिखे उनके एक पत्र को उद्धृत करना आवश्यक समझते हैं। उन्होंने १२ दिसम्बर, १८९७ को लिखा था :

"...सबके लिए संन्यास ठीक नहीं, और संन्यास का संसार में न होना भी दुरुस्त नहीं। हर रंग का मसालह जगत् में बनाया हुआ है। किसी को हंसाना, किसी को रुलाना और आप खड़े होकर तमाशा देखना, यह हमारा काम है, जिस प्रकार कि आतिशबाज अनार के मसालह को गरम-गरम आग से जलाता है और उस बेचारे मसालह से शूं-शूं रूपी हाय-हाय का शोर कराता है, पर आप सदा प्रसन्न रहता है साक्षी-रूप बनकर। कुछ फल पककर भी वृक्ष के साथ लगे रहते हैं, पर कुछ फल पककर गिर पड़ते हैं।"

पत्नी को वापस भेजने के लगभग दो मास बाद श्रीराम ने संन्यास ग्रहण कर लिया।

बाद में श्री राम जब अमेरिका गए तो किसी ने पूछा—"क्या आत्म-साक्षात्कार के लिए हिमालय में जाना आवश्यक था?" तब श्रीराम ने कहा

"यह वैसा ही है जैसे कि कोई छात्र उच्च शिक्षा पाने के लिए दूरस्थ विश्व-विद्यालय में जाता है पर स्नातक होने के बाद उसे वहां रहने की आवश्यकता नहीं रहती।"

इसी प्रकार का उत्तर श्री राम ने मथुरा के श्री शिवगणाचार्य को दिया था। जब उन्होंने राम को लिखा था कि एकान्त छोड़कर कर्मक्षेत्र में आइए। राम ने कहा था :

"मैं अस्थायीरूप से, अपने को महान् कार्यसाधन के योग्य बनाने के लिए एकान्त का सेवन कर रहा हूं।"

एक महात्मा का कथन है :

"मनुष्य की सबसे बड़ी कठिनाई मनुष्य का अपने ही प्रति अज्ञान है। दीये के ही नीचे जैसे अंधेरा होता है वैसे ही मनुष्य उस सत्ता के ही प्रति अंधकार में होता है, जो कि उसकी आत्मा है। हम स्वयं को ही नहीं जानते हैं और, तब यदि हमारा सारा जीवन ही गलत दिशाओं में चला जाता हो, तो आश्चर्य करना व्यर्थ है।

"आत्मज्ञान के अभाव में जीवन उस नौका की भांति है, जिसका चलाने वाला होश में नहीं है, लेकिन नौका को चलाए जा रहा है।

"जीवन को सम्यक् गति और गन्तव्य देने के लिए स्वयं का ज्ञान अत्यन्त आधारभूत है। इसके पूर्व कि जानूं कि मुझे क्या होना है, यह जानना बहुत अनिवार्य है कि मैं क्या हूं ?

"...यदि, जीवन को सार्थकता देनी है और पूर्णता के तट तक अपनी नौका ले जानी है, तो और कुछ जानने से पहले स्वयं को जानने में लग जाओ। उसके बाद ही शेष ज्ञान भी उपयोगी होता है, अन्यथा अज्ञान के हाथों में आया ज्ञान आत्मघाती ही सिद्ध होता है।"

"आत्मानं विद्धि।" आत्मा को जान—यह उपनिषदों का आदेश-वाक्य है। आत्म-ज्ञान ही तो ज्ञान का सार है। जो स्वयं को नहीं जानते, उनके और कुछ जानने का मूल्य ही क्या है ?

o o o

उत्तरकाशी के स्वामी रामाश्रम जी से संन्यास-दीक्षा लेने का निश्चय हुआ था। स्वामी रामाश्रम जी ने संन्यास-दीक्षा के लिए कर्मकाण्ड के

विधि-विधान का पालन करना अनावश्यक समझा। हां, नाई को बुलाकर मुण्डन कराया गया और उनके शिष्य नारायण ने उनके वस्त्रों को गेरुए रंग में रंग दिया। मुण्डन करवाकर राम ने गंगा में स्नान किया और यज्ञोपवीत को गंगा की धारा में प्रवाहित कर दिया। स्नान के पश्चात् संन्यासी के गेरुए वस्त्र पहनकर वे ध्यान करने बैठे। तत्पश्चात् श्री रामाश्रम जी को भोजन करवाया। उन्होंने अपने पूर्वाश्रम के नाम तीर्थराम के शब्दों को आगे-पीछे करके अपना नाम रामतीर्थ रख लिया। यह नाम रखने के दो कारण थे। एक तो यह कि लाहौर में द्वारकापीठ के शंकराचार्य श्री माधवतीर्थ जी ने उन्हें सर्वप्रथम वेदान्त-तत्त्व का ज्ञान दिया था। उनके नाम में तीर्थ शब्द संन्यास का वाचक होने से और पूर्वाश्रम के बहिर्मुखी जीवन को अन्तर्मुखी करने में जैसा उलटफेर है, वैसा ही उलट-फेर नाम में भी हो गया।

वैसे भी शब्दों के साथ खेलना राम को प्रिय था। वे अपने नाम का विश्लेषण करते हुए कहते थे : "एम आई ट्रुथ।" वे कहा करते थे; "लोग ईश्वर की प्रसन्नता पाने के लिए तीर्थयात्रा करते हैं। तीर्थ तो उनके पास नहीं जाता। तीर्थराम को तीर्थाराम (तीर्थों का लक्ष्य) बनाकर वे कहते— यात्री मेरे पास आएं। जो मृतक हैं वे तुम्हारे पास नहीं आ सकते। उन्हें मिलने के लिए तुम्हें स्वयं मरना होगा। मुर्झाए हुए फूलों को गंगा में बहा दिया जाता है। तो फिर यह ताजा फूल गंगा के प्रवाह में क्यों न जाए। मृतकों की अस्थियां गंगा में प्रवाहित की जाती हैं। क्यों न इस जीवित शरीर को गंगा में प्रवाहित किया जाए। इस मानव-देह को ज्ञानाग्नि में जलाकर बलिदान को गौरव क्यों न प्राप्त किया जाए?"

इन दिनों राम ने नियमित दिनचर्या अपना ली थी। वे श्री नारायण से भी सुनिश्चित समय में ही बात करते थे। यहां 'अलिफ' पत्रिका का अंक प्रकाशित करने के लिए, लेखादि देकर राम ने नारायण को लाहौर भेजा।

स्वामी राम की ख्याति उत्तराखण्ड में दिनों दिन फैलती जा रही थी। यात्री और साधु-संन्यासी इस नवीन युवा संन्यासी के दर्शनों के लिए आने लगे, दिनों-दिन दर्शनार्थियों की संख्या बढ़ते जाने से स्वामी राम को ध्यान-

धारणा में असुविधा होने लगी। राम ने इस स्थान को छोड़ देने का निश्चय किया।

१४ जून, १६०१ ई० रामतीर्थ टिहरी से चार-पांच मील दूर एक गुफा में रहने लगे। इस ओर लोगों का आना-जाना बिल्कुल नहीं होता था। यहां उनके ध्यान-धारणा के काम में विघ्न डालने वाला कोई नहीं था। वे आत्मानन्द के सागर में गहरे पैठे रहते। श्रीनारायण जब लाहौर से लौटे तो टिहरी में स्वामी राम को न पाकर आसपास खोजने लगे। स्वामी राम उन्हें गंगा तट पर गहरी नींद से सोए हुए मिले। यह योगनिद्रा थी जो ध्यानयोगियों में प्रायः देखी जाती है। कोई दो मास बाद उनके अन्तर्यामी ने उन्हें हिमालय की दुर्गम ऊंचाइयों की यात्रा करने के लिए प्रेरित किया। श्रीनारायण और श्री तुलाराम भी जो बाद में स्वामी रामानन्द के नाम से विख्यात हुए, इस यात्रा में उनके साथ थे।

वे यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी, त्रियुगी नारायण, केदारनाथ और बदरीनाथ की यात्रा करते रहे। वे यमुनोत्तरी में आकर कुछ दिन ठहरे और वहां से सुमेरु पर्वत-शिखर पर गए। वापस आने पर उन्होंने लिखा :

गंगोत्तरी

सितम्बर, १६०१

"पवित्र सलिला गंगा राम का वियोग न सह सकी और अन्त में एक मास होते ही उसने फिर राम को अपने पास बुला ही लिया। यद्यपि राम की गंगा सब भांति श्री, शक्ति और सम्पत्ति-सम्पन्न है, फिर भी राम से मिलने पर वह अपने आनन्दाश्रुओं के वेग को किसी प्रकार न रोक सकी। गंगोत्तरी पर प्यारी गंगा के तट के सौन्दर्य एवं विनोदशील चुहुल का वर्णन कौन कर सकता है! यहां उसके चिर सहचरों का निर्मल चरित्र, हिमालय के धवल शिखरों और निष्पाप देवदार वृक्षों का चित्र किसके हृदय को आकर्षित न करेगा! देवदार के वृक्षों का सीधा तना तो फारसी कवियों की प्रियतमा के लम्बे कद की स्पर्द्धा करता मालूम होता है। और उसके शान्तिमयी श्वास से हृदय प्रफुल्लित होकर खिल उठता है, आनन्द में एक सीढ़ी ऊपर चढ़ जाता है।

"यमुनोत्तरी के बाद, गंगोत्तरी पहुंचने में यात्रियों को साधारणतः दस

दिन से कम समय नहीं लगता। केवल तीन ही दिन में राम यमुनोत्तरी छोड़कर गंगोत्तरी पर पहुंच गया। उसने एक ऐसे मार्ग का अनुसरण किया जिस पर नीचे मैदान के किसी निवासी के पैर शायद ही कभी पड़े हों। पर्वतीय (लोग) इस मार्ग को छाया-पथ के नाम से पुकारते हैं। लगातार तीन रातें राम ने जंगल की एकान्त गुफाओं में काटीं। मार्ग में न कोई बस्ती, न कोई झोंपड़ी दृष्टिगोचर हुई। दो पैरों वाला भी इस यात्रा में कहीं कोई न दिखाई दिया।

"छाया-पथ यह इसलिए कहलाता है कि प्रायः वर्ष भर इस पर घनी छाया रहती है। किसकी ? तुम सोचते होगे—पेड़ों की ? नहीं, इस पथ पर अधिकांश भाग बादलों से घिरा रहता है। यमुनोत्तरी और गंगोत्तरी के समीपवर्ती गांवों के गड़रिये अपनी भेड़ों को चराते हुए वर्ष के दो-तीन मास हर वर्ष इन्हीं जंगलों में बिताते हैं, जो प्रायः दो हिमाच्छादित शिखरों —बंदर पूंछ और हनुमान मुख के समीप मिलते हैं। यही दोनों शिखर उन विश्वविख्यात भगिनी सरिताओं के स्रोतों को जोड़ते हैं। इस सारे पथ में फूलों की ऐसी अन्धाधुन्ध बाढ़ रहती है कि सारा मार्ग सुनहले फर्श से ढका मालूम होता है। पीले, नीले और गुलाबी फूल तो रंग-बिरंगे ढेर के ढेर चारों ओर फैले रहते हैं। ढेर के ढेर लिली, वायलेट, डायसिस, टयूलिप, गुलगुल, धूप, अतिशय प्यारे रंगों वाली भामरी, केशर, इत्रस और अत्यन्त मनोहर सुगन्ध देने वाले तरह-तरह के अनेक फूल—भेड़गदा, अपूर्व ब्रह्म-कमल आदि अनेक पौधे यहां पाए जाते हैं, जिससे ये पर्वत ऐसे सुरम्य विहार बन जाते हैं कि जहां पृथ्वी और आकाश का स्वामी रहने की ईर्ष्या कर सकता है।

० ० ०

"कहीं-कहीं तो हवा के झोंकों पर सुगन्ध का ऐसा तूफान उठता है कि राम का हृदय मधुर संगीत की भांति नाच उठता है। वायु पर सवार सुगन्ध का यह विशाल सरोवर—एकदम मधुर और एकदम कोमल—दो प्रेमी हृदयों के सम्मिलन की मुस्कराहट के समान मधुर, उनके वियोग-जनित अश्रुओं की भांति कोमल। इन दीर्घाकार पर्वतों की चोटियों पर सुन्दर खेत ऐसे सुशोभित रहते हैं, जैसे बेल-बूटेदार कालीन बिछे हों। इन

पर देवतागण या तो भोजन करने उतरते होंगे अथवा नृत्य-उत्सव के लिए। कल-कल ध्वनि वाले निर्झर और नुकीले पहाड़ों से गुज़रने वाले नद यत्र-तत्र इस अद्भुत दृश्य की शोभा बढ़ाते रहते हैं। किसी-किसी चोटी पर मानो दृष्टि के सारे बन्धन कट जाते हैं। चाहे जिस ओर दृष्टि दौड़ाइए— कहीं कोई रुकावट नहीं, न कोई पहाड़ी और न कोई असन्तुष्ट बादल। उन्मुक्त हो चाहे जहां विचरिये। कोई-कोई उच्च शिखर तो मानो आकाश में छेद करने की स्पर्द्धा-सी करते हैं। वे अपनी उड़ान में रुकना जानते ही नहीं, ऊंचे उठते-उठते मानो सर्वोच्च आकाश एक हो रहे हैं।

"राम का वर्तमान निवास पर्वतीय रंगमंच पर एक छोटी-सी सुरम्य झोंपड़ी में है। चारों ओर हरियाली का फर्श बिछा हुआ है। इस एकांत पर एक प्राकृतिक उद्यान में गंगा की शोभा देखते ही बनती है। राम बूटी का यहां कोई पार नहीं। गोरैया जैसी अनेक चिड़ियां यहां रात-दिन चहचहाती रहती हैं। जलवायु बड़े उत्साह-वर्द्धक हैं। गंगा की कल-कल और पक्षियों का कलरव दोनों मिलाकर स्वर्गीय उत्सव का दृश्य उपस्थित करते हैं। यहां गंगा की घाटी काफी चौड़ी है। किन्तु इस लम्बे-चौड़े मैदान में भी गंगा का प्रवाह बहुत तेज़ है। फिर भी राम अनेक बार उसके आर-पार जाता-आता रहता है। कभी-कभी केदारनाथ और बदरीनाथ भी राम बादशाह को बड़े प्रेम से आने के लिए निमंत्रण भेजते हैं किन्तु ज्यों ही प्यारी गंगा को राम के वियोग का संकेत मिलता है, त्यों ही वह उदास और दुःखी होने लगती है। राम भी उसे दुःखी करना पसन्द नहीं करता ! उसकी उदासी किसे अच्छी लगेगी।"

यमुनोत्तरी-वास के दिनों में स्वामी राम केवल एक बार भोजन करते थे और वह भी मर्चा नामक पहाड़ी अन्न और आलू की सब्जी का। परिणामस्वरूप उनका पेट गड़बड़ा गया।

सुमेरु पर्वत की यात्रा

श्री नारायण और श्री तुलाराम को स्वामी राम ने नीचे धरसाली नामक स्थान को लौट जाने को कहा। रुग्णावस्था में ही तीन-चार दिन के बाद एक दिन प्रातः ही स्वामी राम ने गरम जल के सोते में स्नान किया और सुमेरु पर्वत की यात्रा पर निकल पड़े। पांवों में जूता नहीं, तन पर

कोपीन के अतिरिक्त कोई वस्त्र नहीं। पांच हृष्ट-पुष्ट पर्वतीय युवक इस यात्रा में स्वामी राम के साथ चले। इस दुर्गम यात्रा का वृत्तान्त स्वामी राम के शब्दों में पढ़िये :

"सबसे पहले हमें शिशु रूपिणी यमुना तीन-चार स्थलों पर पार करनी पड़ी। कुछ दूरी पर यमुना घाटी का एक मार्ग एक विशाल हिमशिला खण्ड से अवरुद्ध था ४०-५० गज ऊंचा, डेढ़ फर्लांग के लगभग लम्बा। एकदम सीधे दो पर्वत शिखिर दो दीवालों की भांति सगर्व दोनों ओर खड़े हुए थे। जैसे सचमुच राम बादशाह का पथ रोकने के लिए उन्होंने कोई षड्यंत्र रचा हो। राम कब परवाह करता है! सुदृढ़ अचल संकल्प-शक्ति के आगे बाधाएं ऐसे भागती हैं जैसे आंधी के आगे बादल। हम लोगों ने पर्वत की पश्चिमीय दीवाल पर चढ़ना प्रारंभ किया। कभी-कभी हमें पैर जमाने के लिए एक इंच भी भूमि नहीं मिलती थी। केवल एक ओर हाथों से, सुगन्धित तथा कंटीली गुलाब की झाड़ियों को पकड़कर और दूसरी ओर पर्वतों की 'चा' नामक कोमल घास के नन्हे-नन्हे डंठलों में पैर की उंगलियां गड़ाकर हम बदन को संभाले रहते थे। किसी क्षण हम मृत्यु के मुख में गिर सकते थे। यमुना की घाटी में बर्फ के ठंडे बिस्तरों से भरा हुआ एक गहरा खड्ड हमारे स्वागत के लिए मुंह फैलाए खड़ा था। ज़रा भी जिसका पैर कांपता वही शांति से सुशीतल हिम-समाधि में जाकर सो जाता। निचाई से आने वाली, यमुना की धीमी-धीमी मर्मध्वनि अब भी हमारे कानों में पड़ती थी, जैसे कब्रिस्तान में मृत्युकालीन बाजा बजता हो। इस तरह हम लोग पूरे तीन घंटे तक बराबर मानो मृत्यु के मुख में चलते रहे। सचमुच विचित्र परिस्थिति थी—एक ओर मृत्यु हमारे लिए मुंह बाए खड़ी थी और दूसरी ओर ऐसी भीनी-भीनी सुगंध वाली शीतल और मधुर वायु के झोंके आ रहे थे जिससे चित्त एकदम खिल उठता था। इस भयानक और दुरूह चढ़ाई के बाद हम लोगों ने उस भयंकर अवरोधक को पार कर लिया। वह भयंकर हिम शिलाखण्ड और यमुना पीछे छूट गई। हमारी टुकड़ी पुनः एक सीधे खड़े पर्वत पर चढ़ने लगी। किन्तु कोई रास्ता, कोई पगडंडी—कुछ भी दृष्टिगोचर न होता था। था एक बड़ा भारी सघन जंगल, जिसमें वृक्षों की टहनियां भी ठीक समझ में न आती थीं। राम का

शरीर कई जगह छिल गया। श्रोक श्रौर विरच, देवदार श्रौर चीड़ के इस गंभीर वन में एक घंटे तक संघर्ष करने के बाद श्रन्त में हम लोग एक ऐसी खुली जगह में पहुंचे जहां वनस्पति श्रपेक्षाकृत बहुत छोटी थी। वायु-मण्डल में विद्युत् जैसी लहरें फैल रही थीं, सुगंध के फव्वारे छूट रहे थे। इस चढ़ाई ने पहाड़ियों को बेदम कर दिया। पर इस व्यायाम से राम का चित्त प्रफुल्लित हो उठा—यहां की धरती श्रधिकतर चिकनी थी। फिर भी चारों श्रोर एक से एक मनोहर दृश्य—सुन्दरतम फलों का कानन श्रौर हरियाली की बहार ने हमारी इस कठोर यात्रा के श्रम को हमारी चित्तवृत्ति से सदा दूर ही रखा।

० ० ०

"श्रौर उन दिनों बीमार रहने वाला राम! वह तो श्रौर बीमार हो गया होगा। नहीं, उस दिन बिल्कुल चंगा रहा। न कोई रोग, न कोई थकावट, शिकायत का नामोनिशान (नाम तक) नहीं। कोई भी 'पहाड़ी' उससे श्रागे न निकल सका। हम लोग ऊपर ऊपर चढ़ते ही गए जब कि हरएक को भूख लग श्राई। इस समय हम उस प्रदेश में पहुंचे हुए थे, जहां कभी पानी नहीं बरसता, गिरता है केवल बर्फ श्रत्यन्त सौन्दर्यमयी उदारता के साथ।

"यहां इन नंगे श्रौर वीरान शिखरों पर हरियाली का भी नामोनिशान नहीं दिखाई देता। हमारे श्रागमन के पहले ही सुन्दर हिमपात हुश्रा था।

"राम के स्वागत के लिए साथियों ने एक पत्थर की बड़ी चट्टान पर कालीन की भांति एक लाल कम्बल बिछा दिया श्रौर पिछली रात जो श्रालू उबाले गए थे, भोजन के लिए परोस दिए। साथियों ने भी वही सीधा-सादा बासी भोजन बड़े श्रनुग्रह के साथ किया।

"………भोजन करने के बाद हम लोग तुरन्त उठ खड़े हुए। दृढ़ता के साथ हम लोग श्रागे बढ़े, किन्तु ऊपर भी चढ़ाई कठिन थी। एक नवयुवक थककर गिर पड़ा। उसके फेफड़ों श्रौर हाथ-पैरों ने श्रागे चढ़ने से इन्कार कर दिया। उसका सिर चक्कर खाने लगा। उस समय उसे वहीं छोड़ दिया गया। थोड़ी दूर चलने के बाद एक दूसरा साथी बेहोश होकर

गिर पड़ा। उसने कहा—मेरा सिर घूम रहा है। उसे भी इस समय वहीं छोड़ दिया गया। शेष टुकड़ी—आगे बढ़ी। किन्तु थोड़ी देर बाद तीसरा साथी भी गिरा। उसकी नाक फूट गई, रक्त बहने लगा। दो साथियों को लेकर राम ने आगे का मार्ग लिया।

"तीन अत्यन्त सुन्दर बरार (पहाड़ी हिरन) हवा की तरह दौड़ते निकल गए।

"लो, चौथा साथी भी लड़खड़ाने लगा और अन्त में हिमाच्छादित शिला पर लेट गया। यहां कहीं तरल जल नहीं दिखाई देता। किन्तु शिलाओं के नीचे से, जहां वह आदमी लेटा था, गंभीर घर-घर की आवाज आती थी। एक ब्राह्मण, इस समय भी राम के साथ था, वही लाल कम्बल, एक दूरबीन, एक हरा चश्मा और एक कुल्हाड़ी लिए हुए। यहां हवा बिल्कुल पतली है, जिससे सांस लेने में बड़ी कठिनाई होती है। फिर भी आश्चर्य! दो गरुड़ हमारे सिरों के ऊपर से उड़ते हुए निकल गए। अब, बहुत पुरानी [illegible] चढ़नी थी। विकट काम था। साथी ने कुल्हाड़ी से उस रपटने वाले बर्फ में कुछ गड्ढे बनाना चाहे, जिससे उनमें पैर जमाकर ऊपर जाएं। किन्तु वह पुरातन हिमखण्ड इतना कड़ा था कि उस बेचारे की कुल्हाड़ी टूट गई। और ठीक उसी समय बर्फ के अन्धड़ ने आ घेरा। राम ने उस बेचारे दुःखी हृदय को सान्त्वना देने की चेष्टा की। भगवान् कभी हम लोगों का अनिष्ट नहीं कर सकता, इस हिमवर्षा से हमारा मार्ग निस्सन्देह सुगम हो जाएगा। सचमुच हुआ भी यही। उस भयानक हिमपात से ऊपर चढ़ना कुछ आसान हो गया। नुकीली पर्वतीय छड़ियों की सहायता से हम लोग उस ढाल के ऊपर चढ़ गए और लो, हमारे सामने साफ-चौरस, चमचमाती हुई बर्फ का मीलों लम्बा-चौड़ा विशाल मैदान प्रस्तुत था। शुभ्र रजत जैसी आभा से जगमग फर्श—चारों ओर एकदम समतल। हर्ष—परम हर्ष! जाज्वल्यमान क्षीरसागर, चमकदार, परमोत्तम, विचित्र, विचित्र से विचित्र। राम के हर्ष का पारावार न था। उसने अपनी पूरी चाल से दौड़ना शुरू किया, कन्धों पर लाल कम्बल डालकर और केनवस के जूते पहनकर ऐसी तेज़ी से दौड़ा जैसा कभी न दौड़ा होगा।

"इस समय राम बिल्कुल अकेला था। साथी एक भी नहीं—आत्मा का हंस भी तो अन्त में अकेला ही उड़ता है।

"लगभग तीन मील तक राम दौड़ता चला गया। कभी-कभी टांगें बर्फ में धंस जातीं और निकलती थीं बड़ी कठिनाई से। लो, अब एक हिमानी ढेर पर लाल कम्बल बिछा दिया और बैठ गया, राम एकदम अकेला। संसार के गुलगपाड़े और झंझटों से एकदम ऊपर—समाज की तृष्णा और ज्वाला से एकदम परे नीरवता की चरम सीमा, शान्ति का साम्राज्य। शक्ति का अतुल विस्तार। शब्द का नामो-निशान नहीं है, केवल आनन्द घनघोर। धन्य-धन्य, उस गम्भीर एकान्त को सहस्रबार धन्यवाद!

"बादलों का घूंघट भी यहां पतला पड़ जाता है और उस पतले परदे में होकर सूर्य की किरणें छन करके फर्श पर ऐसे गिरनी शुरू होती हैं कि बात ही बात में उस शुभ्र रजत हिम को प्रदीप्त स्वर्ण में परिणत कर देती हैं। कितना उपयुक्त नामकरण हुआ है इस स्थान का सुमेरु पर्वत—सोने का पहाड़।

"ओ दुनिया के भोले-भाले लोगो! देखो, देखो, क्या सुन्दरी के कपोलों की गुलाबी आभा, चमक से चमकदार हीरे की प्रभा, सुन्दर से सुन्दर राजप्रासाद की कला—इस सुमेरु की अतुलनीय मनोहरता और सौन्दर्य की तुलना में एक क्षण के लिए भी टिक सकती है! नहीं, नहीं! अभी और ऐसे असंख्य सुमेरु तुम्हें अपने ही भीतर मिलेंगे, जब तुम एक बार भी अपनी वास्तविक आत्मा का साक्षात् कर लोगे। सारी सृष्टि मिट्टी के ढेले से लेकर बादल तक, शस्यश्यामला भूमि से लेकर नीलाम्बर तक और उस सृष्टि के भीतर रहने वाले सभी सजीव प्राणी—चींटी से लेकर आकाश में उड़ने वाले गरुड़ तक तुम्हारे स्वागत के लिए उठ खड़े होंगे। कोई देवता भी तुम्हारी अवज्ञा का साहस नहीं कर सकता।"

इस यात्रा की समाप्ति पर स्वामी राम ने भीमताल से लिखा था :

"टीहरी से प्रस्थान करने के बाद आज उत्तराखण्ड की पहाड़ियों का मनोहर दौरा ६०० मील की छोटी-सी यात्रा—परिभ्रमण समाप्त हो गया।

"इस समय ठीक मध्याह्न है। भीमताल की लम्बी-चौड़ी झील चमकते हुए सूर्य की सुनहली किरणों से दहक रही है। यौवन-सम्पन्न पहाड़ियां हरे-हरे दुशालों के घूंघट में अपने चेहरे छिपाए हुए चारों ओर से आंख उठाए ताक रही हैं।

"एक छोटी-सी सफेद रंगी हुई नाव राम को लेकर झील के विशाल लहर-विहीन वक्षःस्थल पर तैर रही है, जैसे महादेव के मस्तक पर दूज का चन्द्रमा खेलता हो।"

१ नवम्बर, १६०१ को उत्तराखण्ड की यात्रा की समाप्ति पर स्वामी राम बदरीनाथ लौट आए। सप्ताह भर बाद दीपावली का पर्व आने वाला था और उसी दिन सूर्यग्रहण भी था। दीपावली तक स्वामी राम बदरीनाथ ही रहे।

शीत ऋतु में हिमालय के उच्चशिखरों पर हिमपात के कारण सारी गतिविधियां रुक जाती हैं। स्वामी राम ने सोचा कि इन दिनों मैदानों में जाकर कार्य करना ठीक होगा। आगामी बड़े दिनों की छुट्टियों में मथुरा में एक धर्म-महोत्सव होने वाला था। उसके संयोजक श्री शिवगणाचार्य ने स्वामी राम को सम्मेलन की अध्यक्षता करने का निमंत्रण दिया था। इस अवसर पर एकत्र होने वाले धर्म-प्राण लोगों के द्वारा स्वामी राम आत्म-साक्षात्कार द्वारा उपलब्ध ज्ञान को चतुर्दिक फैलाना चाहते थे। धर्मचक्र प्रवर्तन के इस अवसर पर लोग भी इस विद्वान् और आत्मद्रष्टा युवा संन्यासी का सन्देश सुनने को समुत्सुक थे।

यह धर्म-सम्मेलन बहुत बड़े स्तर पर आयोजित नहीं था। फिर भी धर्मतत्त्व के जिज्ञासुओं ने स्वामी राम के प्रवचनों को मंत्रमुग्ध होकर सुना। स्वामी राम ने पुरातन और नवीन दार्शनिक सिद्धान्तों का और नवीन वैज्ञानिक ज्ञान का समन्वय करते हुए वेदान्त का विज्ञान-सम्मत होना प्रतिपादित किया।

स्वामी राम कुछ मास धर्मतत्त्व का प्रचार करके, मई, १६०२ को वापस टिहरी की ओर लौट गए। इन्हीं दिनों टिहरी के महाराजा कीर्ति-शाह देहरादून जाते हुए इस मार्ग से निकले। महाराजा के दीवान महोदय स्वामी राम के पास उपस्थित हुए और प्रार्थना की कि महाराज आपके

दर्शन करना चाहते हैं। महाराजा कीर्तिशाह ने स्वामी राम का हार्दिक स्वागत किया। दोनों में अनेक धार्मिक विषयों पर वार्तालाप हुआ। महाराजा के अनुरोध पर स्वामी राम उनके साथ ग्रीष्मकालीन राजनिवास प्रतापनगर में ठहरे।

महाराजा कीर्तिशाह की धर्म में विशेष प्रवृत्ति थी। वे प्राय: स्वामी राम से धर्मचर्चा में प्रवृत्त होते और अपनी शंकाओं का समाधान पाकर अपने को धन्य अनुभव करते।

स्वामी राम सच्चिदानन्द के प्रेम की मस्ती में डूबे, ओ३म् की पवित्र ध्वनि को पर्वत-कन्दराओं में गुंजाते यहां रह रहे थे।

१८९३ ई० में शिकागो (अमेरिका) में एक विराट् धर्म-सम्मेलन का आयोजन हुआ था। इस सम्मेलन ने पश्चिम में नए युग की स्थापना की थी। इस सम्मेलन में पूर्व के अनेक सन्तों ने भोगवाद में डूबे पश्चिम को दिव्य जीवन का सन्देश सुनाया था। इन सन्त-महात्माओं में सर्वतोप्रमुख थे हमारे भारत के स्वामी विवेकानन्द। उनके अतिरिक्त श्रीलंका के अंगारिक धर्मपाल और जापान के जेंशिरो नगूची भी धर्मतत्त्व के विवेचन-कर्त्ताओं में प्रमुख थे।

धर्मप्राण लोगों के मन में रह-रहकर यह बात आती थी कि वैसा ही धर्म-महासम्मेलन फिर होना चाहिए, बार-बार होना चाहिए।

जुलाई, १९०२ की एक संध्या को महाराजा कीर्तिशाह ने स्वामी राम को बताया कि टोकियो (जापान) में धर्म-महासम्मेलन का आयोजन हो रहा है। महाराजा कीर्तिशाह की हार्दिक इच्छा थी कि स्वामी राम इस सम्मेलन में भारतीय हिन्दू-धर्म का प्रतिनिधित्व करें।

स्वामी राम के पास एक ऐसा ईश्वरीय सन्देश था, जिसे वे संसार को देना चाहते थे। उनके पास आनन्द का अक्षय कोश था जिसे वे बांटना चाहते थे। उनके अन्तस् का सत्य अपनी अभिव्यक्ति के लिए मचल रहा था। उनका अन्तर्यामी उन्हें प्रेरित कर रहा था कि अपने हृदय की शान्ति को जन-जन में बांटो।

स्वामी राम ने धर्म-सम्मेलन में हिन्दू-धर्म का प्रतिनिधित्व करने की स्वीकृति महाराजा को दे दी।

टिहरी के महाराजा कीर्तिशाह स्वामी राम की स्वीकृति मिल जाने से उनकी यात्रा की व्यवस्था में लग गए। स्वामी राम और श्री नारायण के लिए समुद्री जहाज में केबिन सुरक्षित करवाया गया। जहाज कलकत्ता बन्दरगाह से चलने वाला था। ट्रेन द्वारा यात्रा करते हुए पहले स्वामी राम और बाद में १९ अगस्त को श्री नारायण कलकत्ता पहुंच गए। संभवत: जहाज २० अगस्त को चलने वाला था किन्तु प्रबन्धकों ने तारीख आगे बढ़ाकर २८ अगस्त कर दी।

स्वामी राम जापान में

कलकत्ता बन्दरगाह से २८ अगस्त, १९०२ को स्वामी राम ने श्री नारायण के साथ यात्रा आरम्भ की। यहां से चलकर उन्होंने हांग-कांग में पड़ाव डाला। यहां रहने वाले भारतीयों ने स्वामी रामतीर्थ का बड़ा स्वागत किया। हांग-कांग में भारतीय बड़ी संख्या में रहते हैं। इनमें अधिकांश व्यापारी हैं। सिक्ख भी काफी हैं। स्वामी रामतीर्थ यहां एक सिन्धी व्यापारी के यहां ठहरे। कुछ पहले ही यहां सिक्खों ने एक भव्य गुरुद्वारे का निर्माण करवाया था। उन्होंने अपने प्रदेश के इस सन्त को गुरुद्वारे में निमंत्रित किया। स्वामी राम ने यहां गुरुभक्ति पर सारपूर्ण व्याख्यान दिया।

यहां सप्ताह भर रहकर फिर यात्रा प्रारम्भ की और योकोहामा में बसायामल आशोमल के यहां एक दिन ठहरे। यहां से नागासाकी होते हुए टोकियो पहुंचे।

टोकियो में स्वामी तीर्थराम सीधे इण्डो-जापानी क्लब नामक संस्था में गए।

उस समय पंजाब के निवासी श्री सरदार पूरनसिंह जी इण्डो-जापानी क्लब के सचिव थे। बाद में पूरनसिंह जी भी स्वामी रामतीर्थ के निकट

सम्पर्क में आए और शिष्य बने। इन पूरनसिंह जी ने ही बाद में "स्टोरी आफ स्वामी राम" के नाम से स्वामी राम का जीवन-चरित्र लिखा।

इण्डो-जापान क्लब के भारतीय स्वामी राम के आगमन से बहुत आनन्दित और उत्साहित हुए। स्वामी राम थोड़े-थोड़े अन्तराल से 'ओ३म्' का उच्चारण करते जाते थे।

क्लब के सचिव पूरनसिंह से उनका संक्षिप्त-सा परिचय हुआ। पूरनसिंह जी ने लिखा है—"स्वामी राम के साथ उनके शिष्य स्वामी नारायण भी थे। मैं उनमें से किसी को भी नहीं जानता था पर मैं तो उत्साह के मारे पागल जैसा हो गया। उनकी भाषा ऐसी—इतनी विचित्र थी, उनके मुख-मण्डल पर ऐसा आध्यात्मिक तेज था कि चुपचाप उनके आज्ञापालन के सिवा मैं कुछ न कर सकता था। मुझसे छोटे स्वामी जी ने पूछा, आप किस देश के निवासी हैं? मेरी आंखों में आंसू आ गए—मधुर और प्रेमभरी आवाज से कहा—'सारा संसार मेरा घर है।'

"झट बड़े स्वामी जी ने मेरी आंखों की ओर देखा और बोले, भलाई करना मेरा धर्म है।"

पूरनसिंह जी को उस दिन बौद्ध विश्वविद्यालय में व्याख्यान देने जाना था। उन्होंने स्वामी जी को भी वहाँ चलने को कहा। उन्होंने स्वीकार कर लिया और उस बौद्ध-सभा में गए। वहाँ उन्होंने व्याख्यान दिया। उनके व्याख्यान में श्रोता इतने तल्लीन हो गए, जैसे ध्यान-समाधि में अवस्थित हों। पूरनसिंह जी के व्याख्यान से स्वामी राम भी खूब प्रभावित हुए।

स्वामी राम टोकियो में यह सुनकर कि यहाँ कोई धर्म-सम्मेलन नहीं हो रहा है, आश्चर्यचकित रह गए। बात यह थी कि भारत में यह घोषणा प्रकाशित हुई थी कि अन्तर्राष्ट्रीय धर्म-सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन (पहला १८९३ में शिकागो में हुआ था) टोकियो में होगा। यह घोषणा जापान के श्री ओकाकुरा के बंगाली मित्रों ने की थी। श्री ओकाकुरा घोषणा होने के समय भारत में ही थे। सम्भवतः श्री ओकाकुरा की इस प्रकार का धर्म-सम्मेलन की इच्छा थी और उन्होंने भारत में स्वामी विवेकानन्द की शिष्या साध्वी भगिनी निवेदिता से इस विषय में विचार-विमर्श किया था। किन्तु यह सारी बात अभी विचाराधीन ही थी और श्री ओकाकुरा भी भारत में

ही थे कि टोकियो के समाचार-पत्रों ने इस समाचार के विरोध में प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया।

स्वामी राम को जब निश्चित रूप से पता लग गया कि यहाँ कोई धर्म-सम्मेलन होने वाला नहीं है तो वे खूब हंसे। वे बोले, "प्रकृति की चालें भी कैसी मजेदार होती हैं! राम को हिमालय के उस एकान्त-निवास से निकाल संसार का पर्यटन कराने के हेतु उसने कैसी सुन्दर युक्ति निकाली। वह झूठा समाचार क्या-क्या गुल खिला रहा है। राम तो स्वयं धर्मों का विशाल सम्मेलन है। यदि टोकियो विश्व-सम्मेलन नहीं करना चाहता, तो न करने दो उसे, राम तो अपना सम्मेलन करेगा ही।"

दूसरे दिन पूरनसिंह जी पुरानी पुस्तकों की दुकान से, १८९३ ई० में शिकागो में सम्पन्न सर्वधर्म-सम्मेलन की छपी हुई विवरण-पुस्तक, जिसमें सब भाषण आदि भी थे, स्वामी राम के लिए खरीद लाए। यह पुस्तक दो भागों में थी। ये पुस्तकें जब उन्होंने स्वामी राम को दीं तो वे बोले, "ओह, ठीक यही चीज, इसी पुस्तक की इच्छा राम के हृदय में उठी थी। कैसे तुम्हारे हाथ लगी। प्रकृति माता स्वयं अपने हाथों राम की आवश्यकताओं की पूर्ति कर रही है।"

स्वामी राम के टोकियो पहुंचने के दूसरे दिन पूना के श्री छत्रे यहां अपने सर्कस का पहला प्रदर्शन करने वाले थे। स्वामी राम अन्य भारतीयों के साथ उसे देखने गए। यहीं पर स्वामी राम की भेंट विख्यात संस्कृत के पंडित, टोकियो इम्पीरियल विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्राध्यापक श्री तकाकुसु से हुई। वे स्वामी राम से अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने पूरनसिंह जी से कहा, "मैं इंग्लैण्ड में प्रोफेसर मैक्समूलर के यहाँ बहुत से पंडितों और दार्शनिकों से मिला हूं। दूसरी जगहों में भी मेरी ऐसे लोगों से भेंट हुई है। परन्तु मैंने ऐसा महान् व्यक्ति कहीं नहीं देखा, जैसे स्वामी राम हैं। वे तो अपनी सम्पूर्ण विचारधारा के जीते-जागते उदाहरण हैं, ऐसे अर्थपूर्ण कि कुछ कहते नहीं बनता। उनमें वेदान्त और बौद्धधर्म एक स्थान पर एकत्र हुआ है। वे स्वयं धर्म हैं। वे एक सच्चे कवि और एक सच्चे दार्शनिक हैं।"

एक अन्य जापानी विद्वान् के० हिराई ने भी उन्हें वहीं देखा था और उनकी अलौकिकता एवं गुणातीत अवस्था की बड़ी प्रशंसा की थी।

स्वामी रामतीर्थ और उनके साथी आगे से दूसरी पंक्ति में बैठे हुए थे। प्रथम पंक्ति में टोकियो की श्री-सम्पन्न सुन्दर युवतियां बैठी हुई थीं। उनके सुरंग रेशमी परिधान बड़े आकर्षक थे। पूरनसिंह इस सौन्दर्य-राशि को किंचित् संकोच के साथ देख रहे थे। जब स्वामी राम ने इन सौन्दर्य-प्रतिमाओं को देखा तो बोले, "पूरन जी, ग्रीवाओं की यह पंक्ति तो ऐसी लगती है जैसे कि काली-काली धारीदार चट्टानों से गंगा इतनी अधिक स्वच्छ पतली-पतली धाराओं में फूट पड़ी हो।"

प्रतिदिन सायं लोग स्वामी राम के पास एकत्र होते। स्वामी राम भी अमृतवर्षा से उनकी पिपासा को शान्त करते। उनके श्रोताओं में जापानी और भारतीय दोनों होते। उनका सौम्य मुखमण्डल और हृदय को स्पर्श करने वाली अमृतवर्षिणी वाणी श्रोताओं को आत्म-विभोर कर देती।

उन्होंने टोकियो के कामर्स कालेज में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्याख्यान दिया था। व्याख्यान का विषय था, 'सफलता का रहस्य।' यह स्वामी राम का एक लम्बा व्याख्यान है और बड़ा प्रभावोत्पादक है। यह व्याख्यान जब स्थानीय पत्रों में प्रकाशित हुआ तो टोकियो स्थित रूसी राजदूत इस व्याख्यान को पढ़कर स्वामी राम से भेंट करने आए पर तब तक स्वामी राम टोकियो छोड़ चुके थे।

टोकियो में एक दिन स्वामी राम ने पूरनसिंह जी से कहा, "मैंने भारत में जापानियों से सुना था कि जापान में एक ऐसी छड़ी मिलती है जो आवश्यकतानुसार, छड़ी, छाता और स्टूल में बदली जा सकती है।" पूरन-सिंह जी उन्हें केनकोवा पार्क नामक बाजार में ले गए। वहां वह विचित्र छड़ी मिल गई। उसे देखकर स्वामी राम ऐसे प्रसन्न हुए जैसे कोई बच्चा अपना मनचाहा खिलौना पाकर होता है। वे कभी स्टूल बनाकर उस पर बैठते और कभी छाता बनाकर तानते और कभी छड़ी बनाकर उसे टेकते हुए चलते।

वे केनकोवा पार्क बाज़ार में जब इस विचित्र छड़ी के बारे में पूछताछ कर रहे थे तो वहां की दूकानों पर काम करने वाली जापानी लड़कियां उनके पीछे-पीछे चलने लगीं। वे उनके वस्त्रों का स्पर्श करतीं और निर्निमेष नेत्रों से उन्हें देखती रहीं। वे आपस में कहने लगीं, "यह तो हम सबसे अधिक

सुन्दर हैं।" फिर वे पूरनसिंह जी से बोलीं, "हम सभी इस अपूर्व सौंदर्य की प्रतिमा के साथ शादी करने के लिए तैयार हैं।"

स्वामी राम तो जापानी भाषा जानते नहीं थे। वे समझ नहीं पा रहे थे कि ये लड़कियां क्या कह रही हैं और क्या चाहती हैं। उन्होंने पूरनसिंह जी से पूछा, "ये क्या कहती हैं ?"

पूरनसिंह जी ने बात बदलकर कह दिया, "ये वेदान्त विषय पर आपके विचार सुनना चाहती हैं। ये वेदान्त का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आपके पास आना चाहती हैं। क्या आप इन्हें पढ़ायेंगे ?"

स्वामी राम ने कहा, "कह दो इनसे, राम के यहाँ सदैव इनका स्वागत होगा। राम तो इनका भी उतना ही है, जितना औरों का।"

जापानी सभ्यता और संस्कृति से स्वामी रामतीर्थ बहुत प्रभावित हुए। जापानियों की कर्मठता ने तो उन्हें मोह ही लिया। अपने व्याख्यान में स्वामी रामतीर्थ बोले, "मैं जिस वेदान्त का प्रचार करता हूं यह वही है जो बुद्धधर्म के अनुयायियों ने जापान में पहुंचाया है।

जापानियों ने स्वामी राम को अपने आत्मीय जैसा समझा और वैसा ही हार्दिक सम्मान दिया। यही नहीं, उनके वहाँ से चले जाने के बाद वहां रह रहे भारतीयों के प्रति भी उनका व्यवहार पहले की अपेक्षा अधिक सौजन्यपूर्ण हो गया।

टोकियो से सान्फ्रांसिस्को (अमेरिका) के लिए विदा होने से पूर्व उन्होंने कहा था, "मैं जापान में 'पूर्णमदः पूर्णमिदम्' गाता हुआ जहाज से उतरा था और 'पूर्णमदः पूर्णमिदम्' गाता हुआ ही जा रहा हूं। यह संस्कृत का उनका प्रिय श्लोक था। यह उपनिषद् का वचन है और वेदान्ततत्त्व का प्रतिपादन करता है। लाहौर में राम ने जब 'अलिफ' नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया था तो उसके आवरण पर यह श्लोक दिया था। इसका अर्थ इस प्रकार है :

'यह भी पूर्ण' वह भी पूर्ण, पूर्ण से निकले पूर्ण, फिर भी शेष बचे पूर्ण।' इस श्लोक में बार-बार दोराए गए 'पूर्ण' शब्द से संभवतः उनका संकेत पूरनसिंह जी की ओर भी था। जो उनके एक दूसरे कथन से स्पष्ट होता है। उन्होंने कहा था, "मैं सर्वधर्म-सम्मेलन के लिए नहीं निकला था, मैं तो

आया था पूरन को मार्ग दिखाने।"

स्वामी राम के इन वचनों का पूरनसिंह जी पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने लिखा है, "बस, मैं तुरन्त उनके प्रेम के मारे सिर मुड़ाकर साधु बन गया—इसलिए नहीं कि मैंने उनसे कुछ शिक्षा पाई थी, क्योंकि मैं उस समय उनकी बात समझता ही न था। और आज भी सन्देह है कि उनकी हर एक बात समझता हूं या नहीं।" आगे पूरनसिंह जी लिखते हैं : "उनके अमेरिका को प्रस्थान करने के लगभग दो मास बाद टोकियो में मेरा फोटो लिया गया। मेरे बहुत से मित्र कहने लगे—"ऐसा लगता है जैसे तुमने अपनी केंचुली उतारकर उन्हीं की रूप-रेखा ग्रहण कर ली हो।" मैंने दो एक व्याख्यान भी दिए, जो सामयिक पत्रों में प्रकाशित हुए। किन्तु आश्चर्य, उनमें वही विचार और बहुत से स्थलों पर तो ठीक वही शब्द थे जो उनके अमेरिका के भाषणों में पाए जाते हैं। इसके बाद मैंने भारतवर्ष में अनेक स्थानों में व्याख्यान दिए और उनके पास अपने व्याख्यानों की टाइप की हुई प्रतियां भेजीं। उनके हृदयस्थ विचार मैं पहले ही यहां सुनाने लगा था।"

दो सप्ताह टोकियो (जापान) में रहकर स्वामी रामतीर्थ ने वहां से अन्यत्र जाने का निश्चय किया। श्री नारायण स्वामी से उन्होंने कहा, "हम दोनों का एकसाथ किसी स्थान में जाकर वेदान्त का विवेचन करना अधिक लाभप्रद नहीं है।" उनका सुझाव था, "जब मैं अमेरिका जा रहा हूं तो नारायण को, बर्मा, श्रीलंका, अफ्रीका और यूरोप के देशों में वेदान्त का प्रचार करना चाहिए।"

इस कार्यक्रम के अनुसार श्री नारायण स्वामी वापस हांगकांग लौट गए और वहाँ से सिंगापुर, वर्तमान इण्डोनेशिया, बर्मा और श्रीलंका गए। बाद में वे पूर्वी और मध्य अफ्रीकी देशों में भी गए। इस प्रकार वेदान्त का प्रचार करते हुए वे १९०३ ई० के अन्त तक लन्दन आ गए और वहाँ से भारत लौट आये।

स्वामी रामतीर्थ टोकियो से श्री छत्रे के साथ जहाज में सवार हुए। श्री छत्रे ने अपनी सर्कस के लिए जहाज किराए पर लिया हुआ था।

स्वामी रामतीर्थ अमेरिका में

स्वामी राम जब टोकियो से चले थे, तो उनके पास कोई रुपया-पैसा नहीं था। जहाज श्री छत्रे ने भाड़े पर किया हुआ था, इसलिए स्वामी राम को यात्रा-भाड़ा नहीं देना पड़ा।

स्वामी राम की ईश्वर-निर्भरता की बात से हम परिचित हैं। उत्तराखण्ड में उन्होंने श्री नारायण को कहकर रुपये-पैसे गंगा की धारा में फिकवा दिए थे। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण ने जो यह आश्वासन दिया है कि मैं अपने भक्तों के योग-क्षेम का वहन करता हूं ?[1] भगवद्-भक्तों की उस पर पूर्ण निष्ठा है, इसलिए वे अपने भोजन-छादन और अन्य आवश्यकताओं की चिन्ता नहीं करते।

स्वामी राम जब जहाज में यात्रा कर रहे थे तो अमेरिका का एक वयोवृद्ध प्रोफेसर यात्री उनका मित्र बन गया। वह इन दिनों रूसी भाषा सीख रहा था। उसने बताया कि वह ग्यारह भाषाएं जानता है। स्वामी राम ने जब उससे पूछा कि वह इस उम्र में एक और भाषा क्यों सीख रहा है, तो उसने बताया कि भूगर्भविज्ञान मेरा विषय है। रूसी भाषा में इस विषय पर एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी गई है। मैं उसका अनुवाद करने के लिए रूसी सीख रहा हूं जिससे मेरे देशवासी उससे लाभान्वित हो सकें।

स्वामी राम उस प्रोफेसर की ज्ञानार्जन की प्रवृत्ति और कर्मठता से अत्यन्त प्रभावित हुए। वे जापानियों की उद्यमशीलता से पहले ही प्रभावित थे और अपने देश भारत के साथ इन उन्नत देशों की तुलना मन-ही-मन करते जा रहे थे।

उसी जहाज़ में कोई डेढ़ सौ जापानी छात्र भी यात्रा कर रहे थे। वे अमेरिका में विशेष अध्ययन के लिए जा रहे थे। उन छात्रों में कई बहुत सम्पन्न घरानों के भी थे। पर उनमें से एक भी ऐसा नहीं था जो घर से रुपए लेकर चला हो। कई तो ऐसे थे, जो घर से जहाज़ का किराया

---

१. तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।—गीता ९।२२

लेकर भी नहीं चले थे। उनमें से कोई जहाज़ की सफाई पर नौकर हो गया था और कोई दूसरा छोटा-मोटा काम करने पर नौकर था। इस प्रकार वे अपना जहाज़ का किराया जुटा रहे थे।

इन छात्रों ने स्वामी राम को पूछने पर बताया था कि हम अपने राष्ट्र का धन विदेशों में जाकर क्यों खर्च करें ?

अमेरिका में जाकर ये छात्र होटल, कारखाने या दफ्तर में काम करके अपना खर्च जुटाते और सांध्य कक्षाओं या रात्रि कक्षाओं में पढ़ते।

स्वामी राम उन छात्रों की देशभक्ति और ज्ञानार्जन की भूख से बहुत प्रभावित हुए।

जहाज़ सानफ्रांसिस्को के बन्दरगाह पर पहुंचा तो सभी यात्री अपने-अपने सामान के साथ उतरने की तैयारी करने लगे। किन्तु स्वामी राम जहाज़ के डेक पर मस्ती के साथ इधर से उधर टहलने लगे। उनकी गेरुए रंग की विचित्र वेश-भूषा और अल्हड़ मस्ती से प्रभावित होकर एक अमेरिकन यात्री ने उनसे पूछा, "आपका सामान कहां है ?"

स्वामी राम ने उत्तर दिया, "मेरा सारा सामान मेरे साथ है।" उस सज्जन ने दूसरा प्रश्न पूछा, "आप अपना रुपया-पैसा कहां रखते हैं ?"

स्वामी राम ने कहा, "मेरे पास कोई रुपया-पैसा नहीं है ?"

पश्चिम की भौतिकता में पले उस सज्जन को ऐसे उत्तर सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसकी उत्सुकता और भी बढ़ गई। उसने तीसरा प्रश्न किया: "तो फिर आपका निर्वाह कैसे होता है ?"

स्वामी राम बोले, "मैं प्राणिमात्र से प्रेम करता हूं। मैं जब प्यासा होता हूं तो कोई मुझे पानी पिला देता है और जब भूखा होता हूं तो कोई रोटी का टुकड़ा दे देता है।"

उस आदमी के आश्चर्य का तो कोई ठिकाना ही नहीं था। उसने विस्मय के साथ पूछा, "क्या अमेरिका में आपका कोई मित्र है ?"

"हां, एक है।" कहकर स्वामी राम ने दोनों हाथ उसके कंधों पर रख दिए और बोले, "और वह तुम हो।"

मानवमात्र के प्रति मैत्रीभाव के इस आदर्श से कुछ क्षण पहले प्रश्नों की झड़ी लगा देने वाला वह आदमी, स्वामी राम के व्यक्तित्व से इतना

प्रभावित हुआ कि उनका भक्त बन गया। उसने स्वामी राम को अपना अतिथि बनाया।

वह स्वामी रामतीर्थ का गुणगान करते अघाता नहीं था। वह कहा करता था, "स्वामी राम के सान्निध्य में आने पर मनुष्य को नवजीवन मिल जाता है।"

इस अमेरिकन सज्जन का नाम था, डॉ० एल्बर्ट हिलर। स्वामी राम लगभग दो वर्ष अमेरिका में रहे और इस अवधि में वे सानफ्रांसिस्को में जितने समय भी रहे, डॉ० हिलर के अतिथि रहे।

जो स्वामी राम पहले दिन किसी एक भी अमेरिकन से परिचित नहीं थे और डॉ० एल्बर्ट के अतिथि थे, कुछ ही दिनों में सारा अमेरिका उनसे परिचित हो गया और वे समूचे देश के माननीय अतिथि बन गए। वे जहां भी जाते, लोग उनका स्वागत करते और उनकी बातों को बड़े मनोयोग से सुनते।

राम पश्चिम वालों को पूर्व की आध्यात्मिकता का सन्देश सुनाते और घंटों धाराप्रवाह बोलते रहते। श्रोता भी मंत्र-मुग्ध हो उनकी अमृत-वाणी का पान करते।

उनके व्याख्यानों में तत्त्वज्ञान का मर्म इस प्रकार स्पष्ट होता है कि बात हृदय में बैठ जाती। उनके व्याख्यानों के स्थायी महत्त्व को समझते हुए श्रीमती पौलिन ह्विटमैन ने अन्तःप्रेरणा से, व्याख्यानों को आशुलिपि द्वारा लिखना प्रारंभ किया। वे स्वामी राम के सचिव का कार्यभार संभालने लगीं। इन्हीं श्रीमती पौलिन ह्विटमैन की कृपा से आज स्वामी राम के कैलीफोर्निया में दिए अनेक व्याख्यान उपलब्ध हैं। यद्यपि स्वामी राम के अमेरिका प्रवास के दिनों का कोई क्रमबद्ध ब्यौरा हमें उपलब्ध नहीं है तथापि उससे अधिक महत्त्वपूर्ण उनके विचार आज उपलब्ध हैं।

स्वामी राम ने अमेरिका प्रवास के प्रारम्भिक दिनों में धर्मप्राण महिलाएं बड़ी संख्या में उनके उपदेश सुनने आतीं किन्तु ज्योंही स्वामी राम के शतदल कमल सदृश पूर्ण विकसित व्यक्तित्व की सुवास चारों ओर फैलने लगी, त्यों ही बड़ी संख्या में पुरुष-समाज भी लाभान्वित होने लगा। उनके प्रवचन के पश्चात् श्रोताओं को प्रश्न पूछने के लिए समय

दिया जाता था। स्वामी राम सभी प्रश्नों के ऐसे समाधानकारक उत्तर देते कि प्रश्नकर्ता सन्तुष्ट हो जाते।

नाना दु:खों से त्रस्त लोग अपनी व्यक्तिगत समस्याएं भी स्वामी राम के समक्ष रखते और उनके द्वारा प्रस्तुत समाधान से संतोष पाते।

अमेरिका के कर्मशील जीवन की स्वामी रामतीर्थ खूब प्रशंसा करते। वे जब शास्ता स्प्रिग में डा० हिलर के पास ठहरे हुए थे तो एक श्रमिक की तरह काम करते थे। वे जंगल से लकड़ियां काटकर लाते थे। एकान्त सेवन के लिए भी वे घने जंगल में चले जाते।

एक बार शास्ता पर्वत की चोटी पर चढ़ने की होड़ लगी। यह चोटी १४५०० फुट के लगभग ऊंची थी। स्वामी राम भी अमेरिकनों के साथ इस होड़ में सम्मिलित हुए और सर्वप्रथम आए। इस प्रतियोगिता को जीतने के लिए मिलने वाला विजयोपहार स्वामी राम ने स्वीकार नहीं किया। इसी प्रकार एक मेराथन दौड़ प्रतियोगिता में भी वे प्रथम आए थे। यह मेराथन दौड़ पूरे तीस मील की थी।

यहां शास्ता नदी के ऊपर स्वामी राम ने अपने लिए आर-पार एक झूला डाल रखा था। उसमें बैठकर वे बाल-सुलभ आनन्द से झूलते थे।

बीच-बीच में वे व्याख्यान देने के लिए भी चले जाते थे। उनके व्याख्यान का विषय या तो वेदान्त होता या उनका प्यारा देश भारत। परतंत्र भारत को स्वतंत्र कराने के लिए विश्वजनमत जगाने का काम स्वामी रामतीर्थ ने किया था।

वृद्ध हिलरदम्पती स्वामी राम से पुत्रवत् स्नेह करता। स्वामी राम भी उनका बड़ा आदर करते थे।

एक दिन एक धन-स्वामिनी अमेरिकन महिला स्वामी राम के पास आई और अपना सर्वस्व—धन और धरती—राम को समर्पित करनी चाही। वह महिला संन्यासिनी भी बनना चाहती थी। पर स्वामी राम तो पूर्ण-काम थे। उन्हें धन और धरती से क्या प्रयोजन था! उन्होंने कुछ भी लेने से इन्कार कर दिया। उस भद्र महिला की उदारता को सराहते हुए स्वामी राम उसे 'गंगा' नाम से सम्बोधित करने लगे।

अमेरिका में स्वामी राम की ख्याति और उनके प्रभावपूर्ण व्याख्यानों

से आकर्षित होकर श्री-सम्पत्ति-सम्पन्न महिलाओं की भीड़ उनके पास आ जुटती थी। पर स्वामी राम खूब जानते थे कि ये महिलाएं जिन्हें घर पर करने को कुछ काम नहीं है, वेदान्त को जानने और समझने की इच्छा से कम, एक विदेशी की विचित्र वेश-भूषा और विचित्र बातें सुनने की उत्सुकता से अधिक आती हैं।

जैसे भगवान् कृष्ण ने गीता[1] में कहा है कि हजारों मनुष्यों में से कोई एक सिद्धि के लिए यत्न करता है और सिद्धि के लिए यत्न करने वालों में से भी कोई एक मुझे ठीक से समझ पाता है, वैसे ही इन महिलाओं की भीड़ में से दो महिलाएं ऐसी निकलीं जो वास्तव में तत्त्व-जिज्ञासा के लिए आई थीं। इनमें से एक तो वही थी जो अपनी सारी सम्पत्ति अर्पण करना चाहती थी और स्वामी राम ने उसे आदरणीय 'गंगा' नाम से पुकारा था।

एक दिन अमेरिका की एक प्रसिद्ध अभिनेत्री स्वामी रामतीर्थ से एकान्त में भेंट करने आई। वह बहुमूल्य हीरे-मोतियों के जड़ाऊ आभूषण और कीमती वस्त्र पहने हुए थी। वह बढ़िया इत्र से इतनी रची-बसी थी कि उसके प्रवेश करते ही आस-पास का सारा वातावरण सुगन्धित हो गया। जब वह भीतर आई तो मुस्कराहट से खिली हुई थी किन्तु वह फर्श पर बैठकर फूट-फूटकर रोने लगी। अपने धन-मान और प्रसन्नता का झूठा आवरण उतारकर वह बोली, "स्वामी जी ! मैं बहुत दुःखी हूं। मेरे दुःख को किसी तरह दूर कीजिए। मेरे आभूषणों में जड़ी मणियों और नकली मुस्कराहट पर ध्यान मत दीजिए। इसमें आन्तरिकता नहीं, दिखावा मात्र है।" उसने अपने जीवन का सारा लेखा-जोखा स्वामी राम के सामने प्रकट कर दिया था। वह नकली जीवन जीते-जीते ऊब गई थी और उससे घृणा करने लगी थी।

स्वामी राम को लगा जैसे मूर्तिमती पाश्चात्य सभ्यता अपने समस्त उपादानों; अपनी पूरी बाहरी तड़क-भड़क के साथ उनके सामने उपस्थित है। इस बाहरी सुसज्जित खोल के भीतर जो उस सभ्यता का वास्तविक

---

१. मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ —गीता ७।३॥

रूप है, वह वही है जो इस महिला ने स्वयं बताया है। स्वामी राम ने उसे सान्त्वना दी और सरल जीवन अपनाने को कहा।

एक दूसरी स्त्री आई। उसका एकमात्र पुत्र मर गया था। वह दुःख से कातर थी। किसी तरह भी उसका मन धीरज नहीं पाता था। घर उसे काटने को दौड़ता था और जीवन भारस्वरूप लगता था।

वह पुत्रशोक के दुःख से निस्तार और शान्ति चाहती थी। स्वामी राम ने उसे कहा, "राम आनन्द और शान्ति देता तो है, पर उसके लिए मूल्य चुकाना पड़ता है।"

वह बोल उठी, "हां-हां स्वामी जी, मैं अपना सर्वस्व उसके बदले देने को तैयार हूं।"

स्वामी राम बोले, "देवि ! आनन्द के राज्य में यह सिक्का नहीं चलता। तुम्हें राम की दुनिया में चलने वाला सिक्का देना होगा।"

वह स्वामी राम के आशय को बिना समझे बोली, "हां, हां, स्वामी जी ! मैं दूंगी, मैं अवश्य दूंगी।"

राम ने कहा, "ठीक है। अच्छा तो लो इस नीग्रो जाति के छोटे से अनाथ बच्चे को अपने ही बच्चे की तरह प्यार करो और पालो। बस, यही वह मूल्य है जो तुम्हें चुकाना पड़ेगा।"

वह बोली, "स्वामी जी ! यह कठिन है। यह बहुत कठिन है।"

"तब तो आनन्द मिलना भी कठिन है।" स्वामी जी ने उत्तर दिया।

और उस महिला ने उस नीग्रो अनाथ बच्चे को अपना स्नेह और ममत्व देकर पाला और पुत्र-शोक से मुक्त हुई।

एक दिन एक नास्तिक महिला राम से विविध प्रश्न पूछने आई। उसका विचार था कि वह राम को भी अपने मत का बना लेगी। किन्तु जिस समय वह आई, स्वामी राम समाधिस्थ थे। जब समाधि से व्युत्थान हुआ और उन्होंने आंखें खोलीं और उस महिला की ओर देखा तो वह बोल पड़ी, "आज मैं नास्तिक नहीं रही। आपके एक दृष्टि-निक्षेप ने मेरा काया-कल्प कर दिया।"

इसी तरह एक अन्य वृद्ध महिला एक दिन स्वामी राम से मिलने आई। जिस समय वह पहुंची, स्वामी राम आंखें मूंदे समाधिस्थ थे। वह

बेचारी सुबकती-रोती अपनी राम-कहानी सुनाती रही किन्तु राम की ओर से कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला तो वह महिला बिगड़ उठी। बोली, "तुम घमंडी और ढोंगी हो।" इतने में ओ३म् का उच्चारण करते हुए स्वामी राम ने आंखें खोल दीं। फिर क्या था! ओ३म् की ध्वनि के उच्चारण का उस महिला पर ऐसा विचित्र प्रभाव पड़ा कि क्या कहना! उस समय की अपनी अवस्था का वर्णन उस महिला ने इस प्रकार किया है, "मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मुझे धरती से ऊपर उठा लिया गया हो। मैं प्रकाशस्वरूप बनकर वायु में तैरने लगी और मैंने अनुभव किया कि मैं विश्व-जननी हूं। सारे देश मेरे हैं और सभी राष्ट्र मेरी सन्तान हैं।"

यह महिला बाद में स्वामी राम की जन्मभूमि भारत और स्वामी राम की साधना-स्थली, उत्तराखण्ड आदि देखने आई थी तो उसने कहा था, "'ओ३म्' शब्द अब भी मेरे रोम-रोम में गूंजता है। राम के दिव्य प्रभाव से मेरे अन्तस् में अमृत-निर्झर फूट पड़ा है और मेरे समस्त पाप-ताप दूर हो गए हैं। मैं पवित्र बन गई हूं।"

स्वामी राम अपना समय ध्यान, स्वाध्याय और वेदान्त के प्रचार-प्रसार में लगाते थे। यहां उन्होंने प्रसिद्ध अमेरिकी विद्वानों—थारो, वाल्ट ह्विटमैन, इमर्सन और विलयम जेम्स के साहित्य का अध्ययन किया।

स्वामी राम ने यहां भारत की ओर से अमेरिकावासियों से एक अपील भी प्रकाशित की थी। वे चाहते थे कि अमेरिका भारतीय छात्रों को तकनीकी शिक्षा देने में सहयोग दे। वे भारत की स्वतन्त्रता के लिए भी अमेरिका का समर्थन चाहते थे। उन्होंने भारत के सम्बन्ध में अनेक व्याख्यान दिए थे। उनमें कुछ थे—भारतवर्ष की प्राचीन आध्यात्मिकता, सभ्य संसार पर भारतवर्ष का आध्यात्मिक ऋण, भारत की समस्याएं, भारत का भविष्य, भारत की ओर से अमेरिकनों से विनय।

स्वामी राम ने अमेरिका के अनेक विश्वविद्यालयों में व्याख्यान दिए थे। उनके व्याख्यान निःशुल्क होते थे। एक बार उनके व्याख्यानों के व्यवस्थापक ने सुझाव दिया था कि श्रोताओं से शुल्क लेना चाहिए किन्तु जब स्वामी जी ने इसे स्वीकार नहीं किया तो वह बोला, "शुल्क के अभाव में व्यवस्था पर होने वाला खर्च कहां से आएगा?" स्वामी राम ने स्पष्ट

शब्दों में कहा, "इसकी व्यवस्था आप अपने पास से कर सकते हैं।" और यही हुआ भी।

जैसा कि पहले उल्लेख हो चुका है कि, स्वामी राम के व्याख्यानों को श्रीमती पौलिन ह्विटमैन आशुलिपि द्वारा लिख लिया करती थीं। स्वामी राम ने पौलिन ह्विटमैन का नाम कमलानन्दा रखा हुआ था। अंग्रेज़ी में दिए गए वे सभी व्याख्यान तीन भागों में 'इन वुडस ऑफ गॉड रियलाइज़ेशन' के नाम से प्रकाशित हो चुके हैं और उनका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है।

स्वामी राम के अमेरिका प्रवास के कार्य-कलाप के बारे में वहां की सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में बहुत कुछ प्रकाशित हुआ था। उनके अमेरिका से लौटने तथा अनन्त समाधि में विलीन होने के बाद, उन व्यक्तियों ने पत्रों तथा लेखों के रूप में भी बहुत कुछ लिखा जो उनके सम्पर्क में अमेरिका में आए थे।

श्रीमती पौलिन ह्विटमैन ने, जो उनके व्याख्यानों को लिपिबद्ध किया करती थीं, शास्ता स्प्रिंग में स्वामी राम की दिन-चर्या के सम्बन्ध में लिखा है :

"वे पहाड़ों के अंचल में, एक तम्बू में रहते थे और रेंच हाउस में खाना खाते थे। यह स्थान अत्यन्त सुन्दर था तथा एक ओर ऊंचे-नीचे पहाड़ों से घिरा हुआ था। एक ओर सदाबहार वृक्ष और घनी झाड़ियां थीं। सेक्रामेंटो नदी कलकल निनाद करती हुई घाटी में बहती थी। यहीं स्वामी राम अनेक पुस्तकों का स्वाध्याय किया करते थे और अपनी दिव्य अनुभूति को काव्य-पंक्तियों में बांधते थे। वे घंटों ध्यान-मग्न बैठे रहते। वे नदी-प्रवाह में स्थित एक ऐसी ऊंची चट्टान पर बैठे रहते जहां पानी बड़े वेग से बहता था। निरन्तर कई दिनों और कई सप्ताहों तक यही क्रम चला। वे घर पर केवल भोजन के समय आते थे और तभी हमें उनकी अमृतवाणी सुनने का सुअवसर प्राप्त होता था। बड़ी संख्या में दर्शनार्थी शास्ता स्प्रिंग से उनके पास आते थे। स्वामी राम प्रसन्नतापूर्वक उनका स्वागत करते थे। वे दूर तक सैर करने निकल जाते थे।

"इस प्रकार वे वहां रहते हुए व्यस्त, सरल और आनन्दपूर्ण जीवन

व्यतीत करते थे। उनका अट्टहास एकाएक फूट पड़ता और जब वे नदी पर बैठे हंसते थे तो उनकी हंसी घर पर सुनाई देती थी। वे एक बालक तथा सन्त की तरह थे। वे कई-कई दिन तक निरन्तर ईश्वर-साक्षात्कार में लीन रहते थे। उनकी भारत के प्रति एकनिष्ठ भक्ति तथा-भारतवासियों के उत्थान की बलवती इच्छा ने उन्हें पूर्ण आत्म-विस्मृति तक पहुंचा दिया था। वे प्राणिमात्र में दिव्यात्मा के दर्शन करते थे और सभी को 'दिव्यात्मा' कहकर पुकारते थे।"

स्वामी राम की वाणी और व्यक्तिगत स्वभाव के बारे में उनके एक अमेरिकन भक्त ने कहा था, "स्वामी राम की वाणी मधुर थी जैसे अबोध शिशु, पक्षियों की चहक, फूलों का सौन्दर्य, बहता निर्झर, पवन से झूलती वृक्ष की शाखाएं, सूर्य का प्रकाश, चन्द्रमा की चांदनी और तारों की झिलमिलाहट···वह मानव के विचारों और स्वप्नों में गहरी पैठती चली जाती और उनका स्वभाव—मोहक, भोले शिशु जैसा निश्छल, पवित्र और सरल, सत्यनिष्ठ और आडम्बरहीन था। प्रत्येक व्याख्यान के बाद उनसे श्रोता प्रश्न पूछते, जिनका वे स्पष्ट, सुविचारित और मधुर उत्तर देते।"

जिन दिनों वे अमेरिका के ग्रामीण अंचलों में घूम-घूमकर व्याख्यान दे रहे थे, जिला-स्तर के दैनिक पत्रों ने उनके व्याख्यानों और कार्यक्रमों का विवरण अपने पत्रों में छापा था। डेनवर से प्रकाशित 'रोकी माउंटेन न्यूज़' ने अपने ४ जनवरी, १९०४ ई० के अंक में लिखा था :

"भारतीय प्रोफेसर स्वामी राम जो आजकल डेनवर पधारे हुए हैं, कल अपराह्न उन्होंने 'यूनिटी चर्च' में दार्शनिक सिद्धान्तों पर व्याख्यान दिया था। उन्होंने कहा, "इस दर्शन का उद्देश्य है वर्तमान जीवन-व्यवहार को संयमित करना। यह दर्शन सरल है और आज की समस्याओं का व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करता है। यह दर्शनशक्ति के कम से कम दुरुपयोग, शरीर और मन की यंत्रणाओं से मुक्ति, ईर्ष्या, द्वेष, मिथ्या, अहंकार, चिड़चिड़ाहट से मुक्त कराकर आपको मानसिक अजीर्ण, बौद्धिक, दारिद्रय और आध्यात्मिक दासत्व से बचाकर सफल कर्मयोग का ज्ञाता बना देगा, जिससे आप सार्वभौम प्रेम द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार कर सकें।"

स्वामी राम अमेरिका में गिरजाघरों में भी व्याख्यान देने जाते थे। लोग उन्हें ईसा का अवतार मानते और सम्मान देते थे।

सच तो यह है कि वे जहां भी गए और जिस किसी से भी मिले, सभी ने उनको आत्मीय की तरह अपनाया। जो भी उनके सम्पर्क में आया उनका भक्त और प्रशंसक बन गया। वे जहां भी गए और जहां भी बोले अपने साथ ज्ञान की ज्योति लेते गए और सोए हृदयों को उद्बोधन देते गए। वेदान्त जो बिना किसी धर्म, जाति या वर्ण-भेद के प्राणिमात्र को मुक्ति का सन्देश देता है, उनका प्रिय विषय था। उनका यह प्रचारकार्य किसी संस्था या संगठन के माध्यम से नहीं हुआ। न ही स्वामी रामतीर्थ ने कभी किसी संस्था के निर्माण की बात सोची। उन्होंने वेदान्त के प्रचार-प्रसार के लिए भी न तो धन स्वीकार किया और न मांगा। वास्तव में वे जीवन-जागृत मूर्तिमन्त वेदान्त थे। उनका जीवन-व्यवहार वेदान्त की व्याख्या थी। वे तीर्थ-स्वरूप महात्मा थे। चलते-फिरते तीर्थ, जहां भी जाते पाप और कलुष को धो डालते।

० ० ०

अब हम उनके अमेरिका प्रवास के सम्बन्ध में व्यक्त, लोगों के उद्गारों को संक्षेप में यहां उद्धृत करेंगे।

प्रसिद्ध देशभक्त और क्रान्तिकारी लाला हरदयाल एम० ए० द्वारा जुलाई, १९११ ई० में 'माडर्न रिव्यू' को भेजे गए लेख से उद्धृत, अनूदित अंश :

"इस भूभाग में ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जो स्वामी रामतीर्थ को बड़े प्रेम और श्रद्धा से स्मरण करते हैं। वे कहते हैं कि स्वामी राम का जीवन एक सच्चे त्यागी और महात्मा का जीवन था। उन्होंने कैलीफोर्निया पर्वतीय उपत्यका में रहने वाले अशिक्षित ग्रामीणों का हृदय भी जीत लिया था। वे स्थानीय समसामयिक पत्रों में प्रकाशित होने वाले अपने व्याख्यानों की प्रशंसात्मक आलोचनाओं को रद्दी के टुकड़ों की भांति समुद्र में फेंक देते थे।……संक्षेप में : जितने भी हिन्दू कभी अमेरिका आए, स्वामी राम उन सबसे महान् थे, एक सच्चे महात्मा, एक सच्चे ऋषि। उनके जीवन में हमें हिन्दुस्तान की आध्यात्मिकता के सर्वोच्च सिद्धान्तों की झलक दिखाई देती

है और उनकी आत्मा—परमात्मा का प्रतिबिम्ब था, जिसे वे अनुभव कर रहे थे।"

श्रीमती वेलमैन अपने पत्र में लिखती हैं :

"सन् १९०३ के प्रारंभिक दिन थे, जब पहले पहल मुझे इस महान् आत्मा से मिलने का अवसर मिला। तब वे सान्फ्रांसिस्को में व्याख्यान दे रहे थे। मैं बड़ी अनिच्छा से उनका व्याख्यान सुनने गई। किन्तु उनकी ओ३म् ध्वनि से मेरा मन ऊपर उठा, मेरी सारी आत्मा में हर्ष की एक ऐसी लहर दौड़ गई जिसका पहले कभी अनुभव नहीं हुआ था। एक स्वर्गीय, आनन्दमय शान्ति ने मेरी आंखें खोल दीं।'

"बस, फिर तो मैंने कभी जीवन के उस दिव्य रस के उपभोग करने का अवसर हाथ से न जाने दिया, जिसे वे बिना मूल्य बांटा करते थे। उन्होंने अमेरिकनों से एक अपील भी की थी कि वे भारत में जाकर और भारतवासियों के पारिवारिक अंग बनकर उनकी सहायता करें। एक काफी बड़ी संख्या में लोगों ने कहा कि वे जाएंगे। किन्तु गया एक भी नहीं। एक दिन मैंने उनसे कहा, "स्वामी जी, आपने मेरा जो उपकार किया है, उसके बदले में मैं आपके देशवासियों की क्या सहायता कर सकती हूं?"

उन्होंने उत्तर दिया, "यदि तुम भारतवर्ष चली भर जाओ तो तुम बहुत कुछ कर सकोगी।"

"मैं जाऊंगी।" मेरा निश्चयात्मक उत्तर था। पर मेरे मित्र इसके विरुद्ध थे, कुछ तो मेरे संकल्प की हंसी उड़ाने लगे। कुछ लोगों ने समझा कि मैं पागल हो गई हूं—विशेषत: जबकि मेरे पास आने-जाने के लिए पर्याप्त रुपया भी नहीं है। किन्तु राम ने कहा, 'यदि तुमने सच्चा वेदान्त समझा है तो तुम्हें डर की आवश्यकता नहीं। भारत में भी ईश्वर तुम्हारी वैसी ही रक्षा करेगा, जैसे अमेरिका में करता है।' और ऐसा ईश्वर ने किया भी। हमारे जीवन के उस दिव्य, सर्वबुद्धि-सम्पन्न वेदान्त सिद्धान्त ने अपनी सर्वशक्तिमत्ता मेरे सामने स्पष्ट सिद्ध कर दी। मेरे प्यारे हिन्दू भाई और बहनों—मेरी ही सन्तानों—ने बड़े प्रेम और उत्सुकता से मेरा स्वागत किया। पांच मास भी न बीतने पाए थे और मैंने अपने परम दयालु राम के सामने किया हुआ प्रण पूर्ण कर दिया। मैं बिल्कुल अकेली उनके

देश के लिए चल खड़ी हुई—उस दशा में जबकि उस दूरस्थ देश में मेरा परिचित एक भी व्यक्ति न था। किन्तु मेरे हृदय में विश्वास था—मैं राम के सिखाए हुए उस अनन्त प्रभु की सर्वसामर्थ्य-सम्पन्न भुजा पर अवलम्बित थी।"

स्वामी जी की एक अन्य शिष्या ने जिनका उल्लेख पहले हो चुका है, स्वामी जी की मृत्यु पर उनके शिष्य पूरनसिंह जी को पत्र में लिखा था :

"शब्दों में वह सामर्थ्य नहीं जो हृदय के भावों को यथार्थ रूप में व्यक्त कर सकें। भाषा के ठंडे और पतले शब्दों के द्वारा उन्हें प्रकट करना सचमुच बड़ा कठिन है।

"समुद्र और सागरों के नीचे, द्वीपों और महाद्वीपों के नीचे खेतों और जड़ी-बूटियों के भीतर, लताओं और वृक्षों के अन्तरंग में उनके जीवन ने प्रवेश किया था। प्रकृति के हृदय में बैठकर वे प्रकृति की आत्मा बन गए थे। मनुष्य के छोटे-छोटे विचारों और स्वप्नों के नीचे, बहुत नीचे उनकी वाणी मुखर हो उठती थी। कितने थोड़े ऐसे कान हैं जिन्हें उस दिव्य संगीत को सुनने का सौभाग्य होता है। उन्होंने सुना था, उसे जीवन में उतारा था। वे उसी में श्वास लेते और उसी को सिखाते थे। उनकी सम्पूर्ण आत्मा उस संगीत से सराबोर हो गई थी। वे आनन्दरस से भरे हुए देवदूत थे।

"ऐ उन्मुक्त आत्मन्! ऐ आत्मन्! तूने अपने शरीर के सम्बन्ध को पूरा कर लिया। ओ आकाश में विचरण करने वाली, अनिर्वचनीय आनन्द का उपभोग करने वाली, लोक-लोकान्तर में विहार करने वाली आत्मा, तुझे सहस्रों नमस्कार! तू स्वतंत्र और बन्धनमुक्त है।"

० ० ०

"वे थे कोमल प्रकृतिस्थ शिशु जैसे पवित्र और श्रेष्ठ, सच्चे और लगनवाले—बिल्कुल सीधे-सादे। जो भी सच्चे हृदय वाला, सत्य का जिज्ञासु उनके सम्पर्क में आया, वह अमूल्य लाभ उठाए बिना न रहा, प्रत्येक व्याख्यान, प्रत्येक सत्संग के पश्चात् लोग उनसे प्रश्न करते थे और वे सदैव बड़ी स्पष्टता से और संक्षेप में बड़ी मधुरता और बड़े प्रेम से उनका उत्तर देते थे।"

० ० ०

यद्यपि स्वामी रामतीर्थ का मुख्य प्रतिपाद्य विषय 'सच्चिदानन्द' की प्राप्ति ही था पर साथ ही देश-भक्ति और उसी के अन्तर्गत देश में व्याप्त बुराइयों, जिनमें जाति-व्यवस्था प्रमुख थी, वे खूब विरोध करते थे। अमेरिका प्रवास में उनके प्रयत्न की एक विशेष दिशा यह थी कि भारतीय नवयुवकों को अमेरिका के विभिन्न नगरों और विभिन्न शिक्षण-संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त करने की सुविधाएं जुटाई जा सकें।

स्वामी राम के इहलीला संवरण कर लेने पर स्वामी राम की शिष्या श्रीमती ह्विटमैन को, उन अनेक अमेरिकनों के पत्र मिले थे, जो स्वामी जी के सम्पर्क में आए थे और लाभान्वित हुए थे। उन्होंने उस महापुरुष के प्रति अपनी श्रद्धांजलि इन पत्रों द्वारा अर्पित की थी। उनमें से एक पत्र हम यहां उद्धृत करेंगे।

डेनवर कोलो
जनवरी २५, १९०७

प्रिय श्रीमती ह्विटमैन,

तीन वर्ष पहले की बात है, जब मैं उस सर्वश्रेष्ठ महापुरुष से मिला था। न उससे पहले और न उसके बाद फिर कभी मुझे वैसी महान् आत्मा के दर्शन हुए। उनकी उपस्थिति से मैं स्वयं कुछ ईश्वर के समीप, समीपतर पहुंचा हूं। उनके शब्द यद्यपि बहुत सीधे-सादे थे; परन्तु उनके द्वारा मुझे यह निश्चित प्रतीति होती थी कि उन्होंने अन्तिम तत्त्व का साक्षात् किया है। इसलिए वे स्वामी राम के नाम से हस्ताक्षर करते थे।

कुछ उनके शब्दों के कारण से नहीं, कुछ उनकी भावनाओं के कारण नहीं, कुछ उनके व्यक्तित्व के कारण नहीं,—हम लोग उनसे इतने प्रभावित हुए थे। सच तो यह है कि वे हमें ऐसे लगते थे, जैसे वे साक्षात् ईश्वर हों। इसीलिए जो भी उनके सम्पर्क में आया, उसके ज्ञान और अनुभव में वृद्धि हुए बिना न रही। वे यहां सुदूर पूर्व से आए थे—मझोला कद और गेहुंआ वर्ण। किन्तु पश्चिम के बड़े-से-बड़े मनुष्य से भी उनका स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण था। जहां से भी वे निकल जाते फूल खिल पड़ते। उन बीजों को चारों दिशाओं में बिखेरने भर की देरी है कि सारा संसार

सुन्दरतम उद्यान बन जाएगा। उनके इस पुष्प का नाम है 'प्रेम'।

उन्होंने हमें ईसा के प्रेम की, कृष्ण के प्रेम की, ईश्वर के प्रेम की कथा सुनाई। पहले भी सुनी थी, पर उनके समझाने से वह हमारी समझ में आई। उन्होंने हममें अपने हृदय को विकसित करने की लालसा जागृत कर दी, उसकी पंखुड़ियों को सूर्य की धूप दिखाने और सुरभि फैलाने की अभिलाषा पैदा की। हमने सोचा—जगत् में आए हैं तो उसे कुछ अच्छा बना जाएं।

यदि हम तूफान में फंस जाएं तो हमें प्रसन्न ही होना चाहिए। मेह के झंझावात के पश्चात् ही तो सुगन्ध में मिठास आती है। यदि हम भी वैसा रहना सीख लें तो हमारा जीवन व्यर्थ नहीं हुआ।

'बुलबुला फूटकर सागर-रूप बन जाता है।' किसी ने मेरे कानों में कहा कि स्वामी राम का शरीर फूट गया। वे अखिल विश्वरूप बन गए। वे सब में समागए और यदि हम अपने ही में उन्हें ढूंढेंगे तो उन्हें अवश्य पाएंगे। घोर हिमवर्षा में वे हैं, उसके छोटे-छोटे कणों में हैं। किन्तु यह वर्षा ऐसे धीरे-धीरे होती है कि हमें उसकी ओर कान लगाना पड़ता है। नहीं तो हमें उस आगमन की खबर ही नहीं होती।

"उसने सब कुछ त्यागा, तब और मिला उसको !
सागर के तट पर, चंचल लहरों में बिखरा,
वह मिला उसे घासों की चंचल नोकों पर,
वह मिला उसे तीव्रगामी झंझा के झोंकों पर—
जो उसकी मृदु भौहों को छू चल देती थीं।
उसने जो पूछे प्रश्न, वही उत्तर बन-बन
उसके जग से लौटे हैं उसकी प्रतिध्वनि में।"

उन्होंने हमें उस शक्ति का पता दिया जो पेड़ों को उगाती है, नदियों को बहाती है और बताया कि यही शक्ति हमारे बालों को उगाती है। सारे जीवन में केवल एक ही शक्ति काम करती है और वह शक्ति है सर्वदा अनन्त।

सूर्य हमसे कहने नहीं आता कि मैं चमक रहा हूं किन्तु उसकी सुखद उष्ण किरणों से हमें स्वयं उसका पता चल जाता है। जब हम प्रेम की

किरणें बाहर भेजते हैं, तब हमारे मिलने वाले उसका अनुभव किए बिना नहीं रह सकते उसी प्रकार हमें स्वामी राम की स्मृति से सहायता मिलती है और उनकी सुगन्ध का अनुभव होता है।

—फ्लोरेंस के०

अमेरिका से स्वदेश लौटते समय स्वामी राम मिस्र में भी रुके थे। फारसी भाषा का उन्हें अच्छा ज्ञान था, जिसके कारण मिस्रवासियों को अपनी बात समझाने में उन्हें सुविधा हुई। मिस्रवासियों ने भी उन्हें अपना हार्दिक प्रेम और सम्मान प्रदान किया। वेदान्त से प्रभावित सूफीमत का यहां प्रचार होने के कारण मिस्रवासियों को वे अपने ही देशवासी जैसे लगे।

सच तो यह है कि स्वामी रामतीर्थ जैसे परमहंस महात्मा देश और काल की, जाति और वर्ण की, मत और सम्प्रदाय की सीमाओं में कभी नहीं बंधते। वे तो घट-घटवासी, उस अविनाशी को सर्वत्र देखते हैं। यही कारण है कि उनका कोई भी पराया नहीं होता। धर्मतत्त्व को जानने वाले ये महात्मा अपनी आत्मिक पवित्रता से अपने चतुर्दिक के वातावरण को भी पवित्र कर देते हैं।

स्वामी राम को जापानियों, अमेरिकनों और मिस्रवासियों ने हृदय की पूरी गहराई के साथ प्रेम किया था। वे सबके थे और सब उनके थे। वे विश्व-नागरिक थे। संभवतः विश्व-नागरिक कहना भी उन असीम महात्मा को ससीम करना होगा, वे तो ब्रह्माण्ड के नागरिक थे, प्राणिमात्र के मित्र और सखा। या यह कहना अधिक संगत होगा कि उन्होंने पिण्ड में ही ब्रह्माण्ड का साक्षात्कार कर लिया था और उपनिषद्-वचन की साक्षी में 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' अर्थात् जो ब्रह्म को जान लेता है, वह 'ब्रह्म' ही हो जाता है, यही श्रुति भगवती उनके लिए सर्वथा उपयुक्त है।

स्वामी रामतीर्थ ८ दिसम्बर, १९०४ ई० को बम्बई पहुंचे थे। बम्बई की जनता ने विदेशों में हिन्दूधर्म और संस्कृति की पवित्र पताका फहराने वाले स्वामी रामतीर्थ का भव्य स्वागत किया।

परतंत्रता के उन दिनों में भी पहले स्वामी विवेकानन्द जी ने और उसके बाद स्वामी रामतीर्थ ने आध्यात्मिकता पर आधारित भारतीय

संस्कृति का उपदेश देकर भोगवाद से संतप्त पश्चिम के मानस को शान्ति प्रदान करने का स्तुत्य कार्य किया था।

सानफ्रांसिस्को के एक पत्र ने स्वामी राम के बारे में लिखा था :

"जगत् की प्राचीन परम्परा को लौटा देना होगा। उत्तर भारत के जंगलों से एक महान् आश्चर्यजनक ज्ञानसम्पन्न व्यक्ति आया हुआ है, जो पैगम्बर, दार्शनिक, वैज्ञानिक, धर्मप्रचारक सभी कुछ है, जो यहां संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में अपने सिद्धान्तों का प्रचार करना चाहता है। वह शक्तिशाली डालर के अन्धभक्त पुजारियों को निःस्वार्थ भावसम्मत आध्यात्मिक शक्ति का नया सन्देश सुनाना चाहता है।"

फिर स्वदेश में

बम्बई में पांच दिन का व्यस्त कार्यक्रम समाप्त करने के बाद स्वामी राम मथुरा आते समय मार्ग में नासिक और होशंगाबाद रुके। इन स्थानों में उन्होंने अपने प्रिय विषय वेदान्त पर प्रवचन दिए।

मथुरा में स्वामी शिवगणाचार्य से उनका पुराना सम्बन्ध था। यहां १६०१ ई० में हुए सर्वधर्म सम्मेलन की स्वामी राम ने अध्यक्षता भी की थी। स्वामी शिवगणाचार्य स्वामी राम की अगवानी करने बम्बई पहुंचे हुए थे और उन्होंने स्वामी राम को आग्रहपूर्वक मथुरा में उनके आश्रम में ठहरने का निमंत्रण दिया था।

स्वामी शिवगणाचार्य का शान्तिआश्रम यमुना के पार, मथुरा नगर की भीड़-भाड़ और कोलाहल से दूर था।

मोक्षदायिका मथुरा नगरी के वासी स्वामी राम की दिव्यामृतवर्षिणी वाणी से सुपरिचित थे। स्वामी राम के आगमन का समाचार सुनकर यहां लोगों में उत्साह और उल्लास की लहर दौड़ गई।

'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'। ब्रह्मवेत्ता स्वयं भी ब्रह्म ही होता है, इस

श्रुतिभगवती के अनुसार यद्यपि स्वामी राम पूर्ण ब्रह्मस्वरूप थे और उनमें कुछ घटा-बढ़ा नहीं था तथापि सांसारिक जनों के दृष्टिकोण से, विदेशों में परम पावन सनातन धर्म के व्यावहारिक वेदान्त सिद्धान्त की विश्वविजयिनी पताका फहराने के कारण उनका यश बहुत बढ़ गया था। लोग उनके दर्शनों से नेत्रों को, उनकी वाणी से श्रोत्रों को और उनकी चरण-धूलि से अपने मस्तक को पवित्र करने के लिए बड़ी संख्या में आते थे।

पूरनसिंह जी जो जापान में स्वामी राम के निकट सम्पर्क में आए थे और उनके शिष्यवत् थे, इन दिनों लाहौर में थे। उन्हें जब स्वामी जी के मथुरा पहुंचने का समाचार मिला तो वे अपने एक मित्र के साथ उनके पास आये।

पूरनसिंह जी ने अपनी इस भेंट का विवरण देते हुए लिखा है : "प्रातः आठ बजे का समय होगा। मैंने देखा, वे इतने दिन चढ़े अपने कमरे में भीतर से सांकल लगाए हुए हैं। उनके विश्राम में व्याघात होने की आशंका होने पर भी मैंने द्वार खटखटाया। उन्होंने पूछा, 'कौन है ?' मैंने कहा, 'मैं तुम्हारा पूरन।' वे उठे और द्वार खोल दिया। शीतकाल था। वे भगवे रंग का कम्बल ओढ़े हुए थे। वे मुझसे मिले किन्तु उनमें वह अपनत्व नहीं था। उन्होंने मुझे अपने पास बैठने की आज्ञा दी। किन्तु ज्यों ही उन्होंने कुछ बोलना चाहा, उनके नेत्र प्रकाश से चमक उठे। उन्होंने कहा, "त्याग और बलिदान से ही देश की स्वतंत्रता प्राप्त की जा सकती है। राम का सिर जाएगा, फिर पूरन का, फिर देश के सैकड़ों नवयुवकों का, तभी देश स्वतंत्र होगा। भारतवर्ष, भारतमाता को स्वतंत्र करना होगा।"

संभवतः पूरनसिंह जी को स्वामी जी का कथन कुछ अप्रत्याशित लगा। स्वतंत्र देशों के नागरिकों में विचरण करने के बाद, स्वदेश की परतंत्रता को शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करने का विचार स्वामी जी के मन-मस्तिष्क पर छा गया था। देश की दासता की बेड़ियों को काटना ही इस समय उन्हें सबसे महत्त्व की बात लग रही थी।

पूरनसिंह जी भेंट करके बाहर निकले ही थे कि इसी समय कोई दो सज्जन आए और स्वामी जी को प्रणाम किया। उनके प्रणाम के उत्तर में स्वामी जी खिलखिलाकर बड़ी देर तक हंसते रहे। कुछ देर बाद जब उनकी

हंसी थमी तो वे बोले, "मेरे प्यारे देशवासियो ! तुम लोग छिप-छिपकर राम की जांच करने आते हो। राम तुम्हारे सामने हृदय खोलकर रख देता है। संसार में सबसे बढ़िया काम है, राम के हृदय की थाह लेना, उसकी जांच-पड़ताल करना। उसका पता लगाओ और दुनिया तुम्हारे चरणों पर लोटेगी।"

पूरनसिंह जी और उनका साथी स्वामी राम के इस विचित्र व्यवहार से आश्चर्यचकित हुए। किन्तु जब दोनों आगन्तुक स्वामी जी के पैरों पर गिर पड़े और बोले, "स्वामी जी क्षमा कीजिए। हम लोगों को सरकारी आदेश-वश आना पड़ता है। आपका मुख-मण्डल देखकर हम आपके क्रीतदास बन जाते हैं।"

उन्होंने स्वीकार किया कि वे सरकार के जासूसी विभाग के कर्मचारी हैं।

यहां रहते समय स्वामी राम यमुना तट पर फैले सिकता पुलिनों में घंटों बैठे सूर्य-स्नान का आनन्द लेते। हिमालय के तपोवनों की शिलाओं की इस यमुना जलधौत पावन रेती का स्पर्श स्वामी जी को बड़ा सुखद लगता। शीतकाल का यमुना का क्षीण-शान्त प्रवाह, दूसरे तट पर मन्दिरों के चमकते कलश और मन्दिर-शिखरों पर लहराते गैरिकध्वज, और घाटों पर स्नान करती धर्म-प्राण जनता बड़ी भली दीखती। कृष्ण की लीलास्थली इस भूमि का कण-कण उनकी लीलाओं की स्मृति दिलाता और स्वामी राम ब्रह्मानन्द में डूब जाते।

एक दिन जब स्वामी राम यमुना के बालुका तट पर विराजमान थे और पूरनसिंह भी उनके पास थे, मथुरा की ओर से, इस ओर आती कुछ नौकाएं दिखाई दीं। ये भारतीय ईसाई स्त्री-पुरुषों की मण्डली थी जो सैर-सपाटे के विचार से इधर आ रही थी। स्वामी जी ने उन्हें देखकर कहा, "पूरनजी, वे सब राम के हैं और राम उनका है। क्या तुम उनसे मेरी बात-चीत करा सकते हो ?"

पूरनसिंह जी उन्हें बुला लाए। स्वामी जी उनसे बड़े प्रेम से बातें करने लगे। उन्होंने कहा, "आपको क्रिसमिस की बधाई हो। राम ईसाई धर्म को धन्यवाद देता है, जो उसने तुम्हें उन्नत बनाया। जो कुछ हिन्दू

धर्म तुम्हारे लिए नहीं कर सका, उसे ईसाई धर्म ने कर दिखाया।"

इन्हीं दिनों मिशन कालेज लाहौर के एक पुराने साथी उन्हें मिलने मथुरा आये। उन्होंने स्वामी राम से कहा, "आपने अपने परिवार, सम्बन्धियों, मित्रों और छात्रों को क्यों छोड़ दिया?"

स्वामी राम ने उत्तर दिया, "व्यक्ति उन्हीं लोगों के साथ सुखपूर्वक रह सकता है जो समान विचारों के हों। व्यक्ति का सच्चा पड़ौसी तो वही हो सकता है जो समान वृत्ति वाला हो। यह आवश्यक नहीं कि जो घर में साथ रहता हो। साथ रहने को तो चूहे, मच्छर और मक्खियां भी साथ रहती हैं। पर क्या उनके साथ पड़ौसी भाव हो सकता है?"

स्वामी शिवगणाचार्य स्वामी राम से देर-देर तक विचार-विनिमय करते रहते थे। वे स्वामी जी को राजनीति से दूर रहने का परामर्श देते थे। उनका यह भी कहना था कि स्वामी जी राजाओं-महाराजाओं से संपर्क स्थापित करें और धनसंग्रह करके अपनी ही एक संस्था की स्थापना करें। यह संस्था उनके विचार-विशेष का प्रचार और प्रसार करे। पर स्वामी राम को उनका परामर्श मान्य नहीं था। वे कोई नया सम्प्रदाय या मत खड़ा करने के पक्ष में नहीं थे। वे मनस्वी जैसे स्वयं शुद्ध, बुद्ध और स्वतंत्र थे, वैसे ही दूसरों को भी रखना चाहते थे। उनका मत था,:

"किसी भी दरवाज़े या खिड़की से तुम्हें आकाश की ओर देखने का अधिकार है। यहां तक कि तुम्हें घर छोड़ने और खुले मैदान में आकर सारे स्वर्ग का मजा लूटने का अधिकार है।"

स्वामी शिवगणाचार्य का मन्तव्य पूरा नहीं हुआ। स्वामी राम को भी लगा कि यह व्यक्ति अभी माया के चक्कर में फंसा हुआ है और बाहर निकलना भी नहीं चाहता। अतः उन्होंने शीघ्र ही शान्तिआश्रम को छोड़कर अन्यत्र जाने का निश्चय कर लिया।

वे अलवर, अलवर से मुरादाबाद और वहाँ से पुष्कर तीर्थ (अजमेर) चले गए।

अजमेर में पुष्कर सरोवर के तट पर स्थित किशनगढ़ राजभवन में स्वामी राम रहने लगे। स्वामी राम के शिष्य नारायण स्वामी यहां उनसे आ मिले। वे लन्दन से लौटकर दक्षिण भारत का भ्रमण कर रहे थे। लाहौर

से पूरनसिंह भी आ गए ।

इन दिनों स्वामी राम अपने पास बाँस का एक खोखला डंडा रखते थे। वे विनोद में इसे जादू का डंडा कहा करते थे। बात यह थी कि पुष्कर सरोवर में मगरमच्छ बहुत थे। उन्हें भगाने के लिए तो स्वामी राम इस डंडे का उपयोग करते ही थे, साथ ही उस डंडे की खोखली पोरी में वे कलम पेंसिल और कागज़ भी रखे रहते। स्वामी राम ने पूरनसिंह जी से कहा था, "राम को इन चीजों के अतिरिक्त किसी भी वस्तु की चाह नहीं है।"

अभी भी शीत शेष था। स्वामी राम मथुरा में यमुना की रेती में बैठा करते थे तो यहां खुली छत पर। वे कहते थे, "राम को कमरे के भीतर बैठना अच्छा नहीं लगता। कमरे तो उसे कब्रों के समान शून्य मालूम होते।"

स्वामी राम प्रति सायं अपने शिष्यों और स्नेहियों को साथ लेकर पुष्कर की पहाड़ियों पर घूमते। वे प्रायः 'ओ३म्' 'ओ३म्' का उच्चारण करते रहते और दूसरों को भी निरन्तर उच्चारण करते रहने के लिए प्रेरित करते।

एक दिन भ्रमण करते हुए राम पहाड़ी के शीर्ष पर पड़ी चट्टान पर बैठ गए और पुकारने लगे—"अरे! ये लोग क्यों ईश्वर को नहीं देख पाते? उन्हें बुलाओ, वे राम के पास आएं, उन्हें ईश्वर के दर्शन कराए जाएं।" वह कहते-कहते उनकी आंखें बन्द हो गईं, आंसू टप-टप झरने लगे और मुख-मण्डल दिव्य आभा से चमक उठा। उनकी फैली हुई भुजाएं इस प्रकार कांपने लगीं, जैसे सारे विश्व को ही अपने अंक में भर लेना चाहती हों।

पूरनसिंह जी ने 'स्वामी राम जीवनकथा' में लिखा है :

"वे मुझे अपने साथ पुष्कर सरोवर में नहाने ले गए। वे बोले, 'राम तुम्हारे आगे रहेगा, तुम राम के पीछे खड़े होकर नहाना। देखो, हमें इन्हीं मगरों के साथ नहाना होगा।' हम लोग पानी में उतरे, वे छाती तक पानी में घुस गए। मैं कुछ-कुछ उनके लिए और पूरी तरह अपने लिए डर रहा था। मुझे तैरना नहीं आता था, फिर भी मैं पीछे-पीछे गया—जैसे उन मगरों के लिए सुस्वादु भोजन के दो कौर बढ़े जा रहे हों। किन्तु स्पष्ट ही

उनके हृदय में डर न था, वे मगरों के स्वभाव को भली-भांति जानते थे। उन्होंने अपना बांस का डंडा पानी में छोड़ दिया, वह उन्हीं के सामने उतराने लगा। मानो मगरों को आगे बढ़ने से रोकने के लिए उन्होंने जादू की छड़ी पानी में छोड़ दी हो और खूब नहाते रहे। फिर अपनी दो उंगलियों से अपने नथने दबाकर डुबकी लगाई। बाहर निकलते ही उन्होंने कहा, "पूरनसिंह जी, देखो मगर हमारी ओर लपक रहे हैं। चलो बाहर चलें। वे नहीं चाहते कि हम उनके पानी में देर तक ठहरें।"

स्वामी राम दूसरों की आलोचना करने से अपने स्नेहियों को रोकते थे। किन्तु यदि कभी भूले-भटके उनके अपने मुख से किसी की आलोचना में कुछ शब्द निकल जाते तो वे तुरन्त 'ओ३म्' का उच्चारण करने लगते और दूसरों को भी ओ३म् कहने के लिए प्रेरित करते।

अजमेर में स्वामी राम ने सार्वजनिक सभाओं में व्याख्यान भी दिए थे। इन दिनों वे देशभक्ति, राष्ट्रीय धर्म आदि विषयों पर अधिक जोर देते थे।

स्वामी राम जानते थे कि पूर्ण नैतिक जीवन जीने के लिए स्वतन्त्रता प्राप्ति परम आवश्यक है। विश्वप्रेम और विश्वमानवता के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भी यह आवश्यक है कि सब देशों में समानता का भाव हो। स्वामी राम का देश-प्रेम और राष्ट्रभक्ति उच्च आदर्शों पर आधारित थी।

लगभग तीन मास अजमेर में बिताने के बाद स्वामी राम जयपुर चले गए। अपने शिष्य नारायण स्वामी को उन्होंने वेदान्त-प्रचार-प्रसार करने के लिए सिन्ध, अफगानिस्तान की यात्रा करने भेज दिया। स्वयं स्वामी राम दार्जिलिंग चले गए। हिमालय के गौरीशंकर शिखर का दर्शन करके और वहां की पार्वती प्रकृति को निरखकर वे परम आनन्दित हुए।

स्वामी राम तीन मास के लगभग दार्जिलिंग में रहे। यहां उन्होंने बीस पुस्तकों का स्वाध्याय किया और पांच पुस्तकों की रचना की।

सितम्बर के प्रारम्भ में वे यहाँ से बंगाल और बिहार के कुछ स्थानों के अवलोकनार्थ नीचे उतर आए। इस तरह वे अपने अभिमत स्थानों की यात्रा करते हुए अक्तूबर में लखनऊ आ पहुंचे। यहाँ वे बाबू गंगाप्रसाद

वर्मा के अतिथि बने और लगभग दो सप्ताह यहाँ रहे। अपने लखनऊ वास के दिनों में स्वामी राम ने अपने उपदेशों के लिए विशेष रूप से छात्र-वर्ग को चुना। वे प्रातः अपने निवास-स्थान पर विद्यार्थियों से मिलते और अपराह्न में शिक्षा-संस्थाओं में जाकर व्याख्यान देते।

सायंकाल को स्वामी रामतीर्थ केसरबाग में सार्वजनिक व्याख्यान देते। अनेक जिज्ञासु इसके पश्चात् उनके निवास पर आते और अपनी समस्याएं और शंकाएं उनके समक्ष रखते।

स्वामी राम छात्रों को हृष्ट-पुष्ट शरीर बनाने और मातृभूमि की सेवा करने के लिए प्रेरित करते।

स्वामी राम सदा आनन्दविभोर रहते। एकदम मस्त। उनकी यह मस्ती बड़ी संक्रामक थी। उनके सम्पर्क में आने वाली भीड़ उनके प्रेम, उनकी मस्ती और ईश्वरार्पण बुद्धि का आस्वाद किए बिना न रहती।

भगवद्-प्रेम की दिव्य ज्योति उनके हृदय में निरन्तर अखण्ड जगी रहती। बिना लपक-झपक के, जैसे निर्वात स्थान में रखे हुए दीपक की निष्कम्प ज्योति जगती है।

पुण्य सलिला गंगा स्वामी राम को बुला रही थी। हिमालय के शिखर और घाटियाँ उन्हें मौन निमंत्रण दे रही थीं। लखनऊ निवास के दिनों में स्वामी रामतीर्थ अत्यधिक व्यस्त रहे थे और काम की अधिकता के कारण अस्वस्थ हो गए थे। वे हरिद्वार चले गए पर स्वास्थ्य-सुधार नहीं हुआ। इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई कि स्वामी जी की परिचर्या के लिए हर समय कोई उनके पास रहे। नारायण जी को सिन्ध से हरिद्वार बुला लिया गया। चिकित्सा से बहुत मामूली-सा लाभ हुआ। फिर तो स्वामी राम ने औषधि बन्द कर दी। सबकुछ रामभरोसे छोड़ दिया गया। जब स्वास्थ्य में थोड़ा-सा सुधार और हुआ तो जलवायु-परिवर्तन के विचार से स्वामी राम मुजफ्फरनगर चले गए। कुछ दिन यहां रहकर वे फिर उत्तराखण्ड के लिए चल पड़े जहाँ उन्हें एकान्त, और विश्राम उपलब्ध हो सकता था।

वे मुजफ्फरनगर से श्री नारायण के साथ फिर हरिद्वार लौट आए।

स्वामी जी की इच्छा थी कि अमेरिका-यात्रा के समय वहाँ दिए

व्याख्यानों को सम्पादित करके पुस्तक रूप में प्रकाशन-योग्य बनाएंगे।

हरिद्वार में गंगा के उस पार पहाड़ी पर स्थित चण्डी-मन्दिर स्वामी जी को बहुत प्रिय लगा। इस पहाड़ी ढाल पर घना वन उसे और भी महत्त्व प्रदान करता था और यहां से चारों ओर का दृश्य बड़ा सुहावना दिखाई देता। अनेक शाखाओं में विभक्त होता, अनेक मोड़ लेता गंगा का प्रवाह बड़ा सौम्य दिखता। गंगा के प्रेमी, प्रकृति के सहचर, हिमालय के उपासक राम का मन यहां खूब रमता। गंगा, हिमालय और प्रकृति—यहां स्वामी राम को तीनों का सान्निध्य प्राप्त था।

व्यास आश्रम में

१९०५ ई० का नवम्बर मास था। स्वामी राम श्री नारायण के साथ उत्तराखण्ड को जाते हुए हृषिकेश ठहरे। यहाँ कुछ दिन रहकर उन्होंने निश्चय किया कि स्वामी रामतीर्थ तो बदरीनाथ के मार्ग में बढ़ते हुए अपने ठहरने के लिए उपयुक्त स्थान का चुनाव करें और श्री नारायण पुस्तकें, अन्य सामान और भोज्यसामग्री लेकर आएं।

स्वामी रामतीर्थ इस बार ऐसे स्थान में कुटिया बनाकर रहना चाहते थे जहां से गंगा पास हो, स्थान मार्ग से कुछ हटकर हो ताकि लोग एकान्त में विघ्न न डालें और मनोरम भी हो।

कुटिया के लिए ऐसे उपयुक्त स्थान की खोज करते-करते स्वामी रामतीर्थ सुप्रसिद्ध व्यास आश्रम जा पहुंचे। यह हृषिकेश से केवल ५० किलो मीटर है। यह स्थान व्यास गंगा और गंगा की मुख्य धारा के संगम के मध्यवर्ती है। यहाँ पहुंचना सरल नहीं है। नदी को पार करने के लिए कोई पुल नहीं है। पानी में उतरकर भी यहाँ नदी को पार करना संभव नहीं था। प्रवाह के ऊपर आर-पार एक रस्सा बंधा हुआ था और इस रस्से के साथ एक टोकरी जैसा पालना लटका हुआ था, जिसमें एक ही आदमी बैठ

सकता था। इस झूलते हुए पालने को रस्सी द्वारा दूसरी ओर खींच लिया जाता था।

स्वामी रामतीर्थ ने यहां तीन कुटियाओं का निर्माण कराया। ये कुटियाएं पास-पास न होकर प्रत्येक एक-दूसरी से पौन किलो मीटर की दूरी पर अवस्थित थी। इनमें से एक कुटिया स्वामी राम के लिए, दूसरी श्री नारायण के लिए और तीसरी रसोई बनाने और रसोइए के निवास के लिए थी। भोजन एक ही जगह बनता था। भोज्यसामग्री बाबा रामनाथ जी काली कम्बली वालों के यहां से आती थी।

स्वामी रामतीर्थ का जीवन स्वयं-स्फूर्त वेदान्त था। मूर्तिमन्त-वेदान्त। उन्होंने पुस्तकों के माध्यम से वेदान्त को नहीं जाना था अपितु जीवन में अनुभूत वेदान्त को पुस्तकों में देखा था। उन्हें पहले आत्म-प्रतीति हुई थी, उसके पश्चात् शास्त्र-वचनों को उन्होंने आत्म-प्रतीति का समर्थन करते पाया था।

गीता में भगवान् कृष्ण ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि तत्त्ववेत्ता के लिए शास्त्र उसी प्रकार प्रयोजनहीन हो जाते हैं, जैसे चारों ओर जल होने पर वापी-कूप आदि निष्प्रयोजन हो जाते हैं[1]। पर पुस्तक-पंडित इस कसौटी को कहां मानता है। वह भक्ति की अपेक्षा 'विभक्ति' में ज्यादा विश्वास रखता है। वह शास्त्र के शब्दार्थ, भाष्य और व्याख्या को ही जीवन की चरम परिणति मानता है। उसके लिए शास्त्र साधन न होकर साध्य बन जाता है। ऐसे ही कुछ पुस्तक-पंडितों ने यत्र-तत्र स्वामी रामतीर्थ पर आक्षेप किया था कि उन्होंने विधिवत् संस्कृत भाषा का अध्ययन तो किया नहीं है, इसलिए वे शास्त्र के वचनों के मर्म को नहीं समझ सकते हैं और वेदान्त जैसे अत्यन्त गूढ़ विषय पर व्याख्यान देने के अधिकारी नहीं हैं।

स्वामी रामतीर्थ अपनी आलोचना से तनिक भी विचलित नहीं होते थे। परन्तु इस आलोचना से उन्होंने संस्कृत भाषा का विधिवत् अध्ययन करने और तत्पश्चात् मूल शास्त्रों का अध्ययन करने की प्रेरणा अवश्य

---

१. यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।
तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः॥—गीता २।४६॥

ग्रहण की। यद्यपि स्वामी जी ने बी० ए० में संस्कृत पढ़ी थी पर वह तो काम चलाऊ-सा अध्ययन था। अब वे अपने अध्ययन को गहन और व्यापक बनाना चाहते थे। उनका विचार था कि यह सब कर लेने के बाद वेदों की पौर्वात्य और पाश्चात्य, दोनों पद्धतियों से व्याख्या करेंगे। शास्त्र-ज्ञान को आत्म-प्रतीति से भावित करके वे एक अनूठी भावभूमि प्रदान करना चाहते थे। वे विलक्षण प्रतिभा के स्वामी थे। वे वश्यात्मा थे। उनके लिए कुछ भी दुष्कर नहीं था।

भगवान् वेदव्यास ने वेदों का विषय-विभाग पूर्वकाल में किया था। आज भी एक मनीषी उन्हीं महर्षि व्यास के नाम से प्रसिद्ध आश्रम में वैदिक ऋचाओं के पाठ और अर्थ में तत्पर था। इन दिनों जब वे वेद-पाठ कर रहे होते और कोई दर्शनार्थी आ उपस्थित होता तो वे सस्मित कहते—"देखो, वेदव्यास जी वेद-पाठ कर रहे हैं।" स्वामी रामतीर्थ ने वैदिक और लौकिक संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करके वेदों के प्राचीन भाष्यों का अध्ययन तो किया, आधुनिक मनीषियों द्वारा की गई वैदिक साहित्य की व्याख्याओं और आलोचना को भी पढ़ा।

इन दिनों स्वामी रामतीर्थ की प्रकृति धीर और गम्भीर हो गई थी। पहले की बाल-सुलभ चेष्टाएं, वह उनका उन्मुक्त हास इन दिनों दिखाई नहीं देता था।

इन दिनों स्वामी जी स्फुट लेख लिखने और संस्कृत ग्रन्थों के स्वाध्याय में मग्न रहते थे।

समीप के गांव के लोग स्वामी जी के पास आते और दूध या फल उपहार में लाते।

स्वामी रामतीर्थ के स्वाध्याय का मुख्य विषय उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और गीता आदि ग्रन्थ थे। वे आचार्य शंकर द्वारा प्रतिपादित अद्वैत के उपासक थे। आदिगुरु शंकराचार्य से वे सर्वाधिक प्रभावित थे। वे उन्हीं के भाष्य को सर्वाधिक प्रामाणिक मानते थे।

स्वामी राम जो स्फुट लेख लिखते थे, उनकी प्रतिलिपियां तैयार करने के लिए उन्होंने सरदार पूरनसिंह जी को एक डुप्लीकेटर लाने के लिए लिखा था। श्री पूरनसिंह जी डुप्लीकेटर ले आए थे जिससे लेखों की प्रति-

लिपियां तैयार करना सुगम हो गया था। पूरनसिंह जी को स्वामी राम की गहन-गम्भीरता कुछ खली। महापुरुष हिमवान् की तरह धैर्यशाली और सागर की तरह गंभीर होते हैं, यह सर्वविदित है। पर पहले तो स्वामी राम ऐसे नहीं थे। इससे उनके श्रद्धालुभक्तों को वे सुगम और सुलभ लगते थे। अब वह बात नहीं थी। इसीलिए पूरनसिंह जी ने पूछ ही लिया, "स्वामी जी, आपमें इतना परिवर्तन कैसे हुआ? मुझे आप एकदम उदास मालूम होते हैं।"

स्वामी जी ने उत्तर दिया, "पूरन जी, लोगों को केवल मेरे फूलों से मतलब है। मुझे तभी सूंघना चाहते हैं, जब मैं फूलों के रूप में खिलता हूं। किन्तु उन्हें इस बात का पता नहीं कि मुझे पृथ्वी के भीतर, अन्धेरी गुफाओं में अपनी जड़ों को पुष्ट करने में कितना घोर परिश्रम करना पड़ता है। जिससे फूल और फल बराबर खिलते रहें। इस समय मैं अपनी जड़ों में हूं। मौन एक महान् कार्य है। संसार को अपने विचार प्रदान करने से, उसके सामने उपदेशों की फुलझड़ियां छोड़ने से यह महत्तर कार्य है।"

इन दिनों स्वामी राम अपने अन्तर्जगत् में प्रविष्ट होकर 'आत्मन्येव आत्मना तुष्टः' की स्थिति को प्राप्त कर चुके थे।

आध्यात्मिक जीवन का चरम उत्कर्ष—'स्व-रूप' में स्थिति—उन्होंने प्राप्त कर लिया था। जिस लाभ को प्राप्त करने के पश्चात् किसी दूसरे लाभ को मनुष्य बड़ा नहीं मानता[1] वह स्थिति उन्हें प्राप्त थी।

व्यासाश्रम में उनका सान्निध्य-लाभ प्राप्त करने वाले उनके प्रिय शिष्य पूरनसिंह जी ने लिखा है:

"(वे) कई दिन तक लगातार पद्मासन लगाए बैठे रहते, न शरीर का ध्यान, न शीतोष्ण आदि द्वन्द्वों की परवाह।"

स्वामी राम ने पूरनसिंह जी के विवाह कर लेने का अनुमोदन किया था। उन्होंने कहा था, "तुमने विवाह करके अच्छा किया। गृहस्थ जीवन में स्थायित्व है। तुम्हारी पत्नी को आत्म-साक्षात्कार में तुम्हारा सहायक बनना चाहिए। आओ, दोनों दुनिया को छोड़ दो और आकर इन पहाड़ियों

---

१. यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।—गीता ६।२२

की चोटी पर निवास करो। जैसे राम इस पहाड़ी पर रहता है, उसी तरह तुम लोग भी यहां से कुछ दूर दूसरी पहाड़ी पर रह सकते हो।"

फिर उन्होंने एक पूर्व-प्रसंग का उल्लेख करते हुए कहा, "ब्रह्मानन्द (उनके पुत्र का नाम) की मां का चेहरा कैसा दिव्य था। उस दिन तो वह ज्योतिर्मयी मालूम होती थी, तुमने इस पर ध्यान दिया था क्या ?"

बात यह थी कि कुछ दिन पूर्व स्वामी रामतीर्थ की पत्नी और पुत्र उनके दर्शन करने हरिद्वार आए थे। जब उनके आगमन की सूचना पूरनसिंह जी ने दी तो स्वामी राम ने कहा कि उन्हें कहें कि वे लौट जाएं, मैं उनसे नहीं मिलूंगा। इसी पूर्व-प्रसंग को स्मरण करते हुए स्वामी रामतीर्थ ने कहा था—"तुम्हें स्मरण होगा, राम ने तुमसे हरिद्वार में कहा था कि राम के घर वालों को वापस लौटा दो और तुम अत्यन्त क्रुद्ध हुए थे। राम के भी हृदय है किन्तु उस समय राम ने उस भेष के नियमों को मानना ही ठीक समझा, जिसे उसने स्वेच्छा से धारण किया है। उन लोगों से मिलना अस्वीकार करना केवल नियम की बात थी। मनुष्य अपने व्यक्तिगत सम्बन्धों को तब तक कैसे भूल सकता है जब तक उसके वक्षस्थल में हृदय की धड़कन विद्यमान है। फिर वह तड़प चाहे राम के लिए हो, चाहे मनुष्य के लिए। कवियों को जड़ पत्थरों के रूप में कैसे बदला जा सकता है ? आध्यात्मिक विकास का यह अर्थ नहीं कि हम भावना-शून्य हो जाएं। कवि कीट्स बेचारा केवल कटु शब्दों से मारा गया। उत्थान जितना ऊंचा होता है, भावना भी उतनी ही प्रबल और सतेज हो जाती है।

"पूरन जी, राम को यह मालूम न था कि अब इस देश में यह भगवा वस्त्र स्वतंत्रता का बाना नहीं रह गया है। दासों ने यह भेष बनाना प्रारम्भ कर दिया है और उन्होंने इसे नियमों से इतना अधिक जकड़ दिया है, उसे ऐसा दिखावटी बना दिया है कि अब राम को उससे बेचैनी मालूम होने लगी है। अब की बार जब राम नीचे मैदान में जाएगा तो जनता के सामने भरी सभा में इस वेष के टुकड़े-टुकड़े कर डालेगा। राम घोषणा करेगा कि अब संन्यासी के भगवे वेष के द्वार स्वतंत्रता की साधना नहीं की जा सकती, क्योंकि यह परतंत्रता का द्योतक बन गया है।"

स्वतंत्रचेता स्वामी रामतीर्थ किन्हीं लकीरों, परिपाटियों का अन्धानु-

करण करने वाले नहीं थे। वे परम्पराओं के पीछे छिपे सत्य के द्रष्टा थे। वे ज्ञानी, भक्त और योगी थे। वे इन सबके संगम-स्थल थे।

वे कवि-हृदय थे—भावातिरेक से भरपूर। श्रीमती बैल मैन जिन्हें स्वामी राम 'सूर्यानन्द' नाम से सम्बोधित करते थे, अमेरिका के लिए प्रस्थान करने से पूर्व स्वामी राम के दर्शन करने और उनका आशीर्वाद प्राप्त करने व्यास-आश्रम के समीप पहुंचीं तो स्वामी राम यह सोचकर कि इस विदेशी महिला के लिए रस्से से लटकती टोकरी में बैठकर गंगा पार करना कठिन होगा, स्वयं उस रस्से द्वारा नदी पार करके मिलने आए।

विदा होते समय स्वामी राम अस्ताचलगामी सूर्य की ओर अभिमुख हुए थे जो गंगा की धारा में प्रतिबिम्बित हो रहा था और दूसरी ओर अन्तर्ज्योति स्वामी रामतीर्थ के मुखमण्डल को भी आलोकित कर रही थी। स्वामी राम बोले, "सूर्यानन्द! विदा! जाओ। देखो, सूर्य डूब रहा है, यही तुम्हारा राम है। इस स्वर्णभूमि को कभी भूलना नहीं। चाहे जहां जाओ, इसे सदा अपने हृदय में अंकित रखना।"

उनकी वाणी के उतार और संकेत से श्रीमती बैल मैन ने समझा लिया कि वे उससे अन्तिम नमस्कार कर रहे हैं। श्रीमती बैल मैन का हृदय उनके प्रतीकात्मक शब्दों का अर्थ समझकर भर गया। उसने कहा था, "स्वामी रामतीर्थ अब कभी पहाड़ों से नीचे उतरेंगे, इसकी अब कोई आशा नहीं रही।"

वसिष्ठ आश्रम में

फरवरी १६०६ ई० को स्वामी रामतीर्थ ने व्यास आश्रम से टिहरी को प्रस्थान किया। वे अधिक ऊंचे, एकान्त और शान्त स्थान में वास करना चाहते थे।

टिहरी राज्य के महाराज ने उनका हार्दिक स्वागत किया और कुछ दिन वहीं रुकने की प्रार्थना भी की। वे कुछ दिन वहां रुके और महाराज

का आतिथ्य स्वीकार किया।

यहां से वे वसिष्ठ आश्रम गए। यहीं उनका पड़ाव था। यह स्थान टिहरी से ५० मील के लगभग दूर तथा बारह-तेरह हज़ार फीट की ऊँचाई पर अवस्थित था। यह स्थान सब दृष्टियों से स्वामी जी को सुन्दर लगा। उन्हें यहां आए अभी एक मास ही हुआ था कि वे बहुत बीमार हो गए। उनका रसोइया भी बीमार हो गया। फिर भी स्वामी जी ने यहीं रहने का निश्चय किया। वे जिस गुफा में रह रहे थे, उसके पास ही एक झरना बहता था। यह स्थान हिमरेखा से ऊपर था। देवदार, केदार और चीड़ के वृक्षों से आच्छादित अत्यन्त रमणीक था। कोई तीन मील दूर गांव से युवक आता और स्वामी जी के लिए भोजन बना जाता।

इस पर्वत से केदारनाथ, बदरीनाथ, सुमेरु, कैलास और गंगोत्तरी-यमुनोत्तरी स्पष्ट दिखाई देते थे।

स्वामी राम आस-पास भ्रमण करने के लिए निकल जाते और परमानन्द में मग्न होकर ताली बजाते नाचने लगते। कभी ध्यानमग्न चलते-चलते उनका पांव फिसल जाता तो वे कहते, "ओह! देखा! राम ने अपने प्रियतम को भुला दिया है, तभी तो गिरा है। नहीं तो गिरना कैसा! पहले हम भीतर गिरते हैं और फिर बाहर। बाहरी पतन तो केवल परिणाम है। श्वास-श्वास पर प्रियतम का स्मरण करो। उसके बिना एक भी क्षण व्यतीत न हो।"

इन दिनों उन्हें देखकर ऐसा लगता था कि उनके भीतर का पुराना भक्ति-भाव फिर जागृत हो चला है।

श्री पूरनसिंह जी यहां भी कुछ समय उनके साथ रहे थे। वे अपने साथ स्वामी जी के लिए कुछ पुस्तकें ले आए थे। पर स्वामी जी जो पुस्तकों के अत्यन्त प्रेमी थे, आजकल पुस्तकों से भी विरत हो चुके थे। वे अपनी कुटिया में बैठे या लेटे रहते। श्री पूरनसिंह स्वामी जी का ध्यान पुस्तकों की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करते पर इसमें सफलता न मिलने पर वे कोई पुस्तक स्वामी जी के हाथ में थमा देते पर कुछ ही देर बाद पुस्तक हाथों से गिर पड़ती और स्वामी जी की आंखों से झर-झर आंसू बहने लगते। उन्होंने प्रेम के ढाई आखर पढ़ लिए थे। उन्हें पुस्तकों में छपे आखरों

से कोई प्रयोजन नहीं रह गया था। उनके नेत्रों में प्रियतम की छवि समा चुकी थी और क्षण भर के लिए भी उस छवि के अतिरिक्त कुछ निरखना उन्हें नहीं भाता है।

उनके शिष्य श्री नारायण उनके इस भाव-परिवर्तन का कारण अस्वस्थता को समझते थे। उनका विचार था कि अपच रोग के कारण ही ऐसी शिथिलता स्वामी जी में आ गई है।

क्या नारायण और क्या पूरनसिंह—दोनों को स्वामीजी का यह गाम्भीर्य खलता था। बात यह है कि भक्तों को लीला पसन्द है। गोपियों ने कहा था, 'ऊधो 'जोग' जोग हम नाहीं।'

हंसता-खेलता स्वामी सेवकों को अधिक काम्य होता है। गुरु-गंभीर स्वामी को समझना, उनकी सेवा करना कठिन कार्य है। ठीक वैसे ही जैसे निराकार की अपेक्षा साकार की उपासना सरल है। गीता में भगवान् ने स्पष्ट शब्दों में कहा है: अव्यक्त की उपासना क्लेशकर होती है[1]।

श्री नारायण स्वामी राम के प्रति अनन्य प्रेम के कारण कभी-कभी उनसे उलझ पड़ते थे। स्वामी राम के स्वास्थ्य के प्रति उनकी चिन्ता ही इसका कारण था।

स्वामी रामतीर्थ जी ने किसी वाद-विवाद में पड़ने के उद्देश्य से यह आज्ञा दे रखी थी कि आपसी बात-चीत में कभी किसी व्यक्ति-विशेष की आलोचना न करें। फिर भी कभी-कभी ऐसा प्रसंग उपस्थित हो ही जाता। जब भी श्री नारायण या श्री पूरनसिंह जी इस प्रकार की कोई बात करते तो स्वामी जी झट टोक देते।

एक-दूसरे का समय व्यर्थ की चर्चाओं में नष्ट न करे, इसी उद्देश्य से श्री नारायण अलग रह रहे थे।

उन्हें एक दिन एक पत्र मिला। लिखा था, "पुलिस आपके पीछे पड़ी है, वह आपको एक बड़ा विद्रोही राष्ट्रीय नेता मानती है, जो भारत में ब्रिटिश शासन को उलट देना चाहता है।"

इस पर स्वामी जी की प्रतिक्रिया इस प्रकार थी—"उनसे कह दो,

---

१. क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।—गीता १२।५

राम अपने बचाव में एक शब्द भी कहना नहीं चाहता। वे इस शरीर के साथ चाहे जैसा व्यवहार कर सकते हैं। मैं जो कुछ हूं, उससे अन्यथा नहीं हो सकता। एक भारतीय होने के नाते मैं सदा अपने देश की स्वतंत्रता चाहता हूं। स्वतंत्र तो वह एक दिन होगा ही किन्तु यह राम देश की स्वतंत्रता प्राप्त करेगा या दूसरे हज़ारों राम उसे प्राप्त करेंगे—कोई कह नहीं सकता।"

एक दिन स्वामी राम, श्री नारायण तथा पूरनसिंह जी ने निश्चय किया कि वे बुद्ध केदार की हिमशिलाओं को देखने चलेंगे। वास्तव में यह कार्यक्रम स्वामी जी में व्याप्त उदासीनता को दूर करने की दृष्टि से बनाया गया था। पर्वतशिखर पर पहुंचते-पहुंचते सन्ध्या उतर आई। अब वहां रात काटने की समस्या थी। पास ही एक गड़रिए की झोंपड़ी थी, पर उसने रात काटने के लिए स्थान देने से मना कर दिया। जब श्री नारायण और पूरन जी के अनुनय-विनय करने पर भी गड़रिया नहीं माना तो स्वामी जी आगे बढ़े। अब गड़रिया एकदम पसीज गया और उन लोगों ने रात वहीं काटी। प्रातः ही स्वामी जी ने दोनों साथियों को हिमालय के विविध मनोहारी दृश्य दिखाने प्रारंभ किए। बाल रवि की किरणों ने रुपहली हिमराशि को स्वर्णराशि में परिवर्तित कर दिया था। तीनों जन इस दिव्य हिमसौन्दर्य का निर्निमेष नेत्रों से पान करते रहे। कार्यक्रम के अनुसार उन्हें अभी और आगे जाना था पर स्वामी राम ने आगे जाने में अनिच्छा व्यक्त की। उनकी इच्छा को महत्त्व देते हुए श्री पूरनसिंह ने भी आगे जाने से मना कर दिया और कहा कि मेरे पांव दुखने लगे हैं। पर श्री नारायण आगे जाने के इच्छुक थे। वे समझ गए कि श्री पूरनसिंह जी केवल स्वामी जी की इच्छा-पूर्ति के लिए ही मना कर रहे हैं। आगे जाने के कार्यक्रम के स्थगित होने से श्री नारायण कुछ खिन्न भी हुए।

स्वामी जी जिस गुफा में रहते थे, वह वर्षा होने पर पानी से भर जाती थी। ऐसे कठिन समय में स्वामी जी गुफा से नीचे स्थानीय गड़रियों द्वारा उनके ही लिए निर्मित एक कुटिया में चले जाते। पर यह कुटिया भी वर्षा में अधिक सुरक्षित नहीं रहती थी। एक बार तो वर्षा से अपनी पुस्तकों और कपड़ों को भीगने से बचाने के लिए स्वामी जी रातभर छाता ताने

खड़े रहे थे।

वसिष्ठाश्रम में यद्यपि अनेक कठिनाइयां थीं, तथापि स्वामी जी इस स्थान को छोड़ना नहीं चाहते थे। अन्न की उपलब्धि में भी यहां कठिनाई थी। पहाड़ी कदन्न को खाकर निर्वाह करना पड़ता था, जिसके कारण स्वामी जी का पेट खराब रहता। वर्षा होने पर गुफा में पानी भर जाता। इस स्थान का आकर्षण इन सब कठिनाइयों से ऊपर था। स्वामी जी ने वसिष्ठ आश्रम के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए एक पत्र में लिखा है :

"यह आश्रम हिमरेखा के ऊपर है। एक अत्यन्त सुन्दर स्रोत, वसिष्ठ नामक गंगा ठीक राम की गुफा के नीचे बहती है। इस स्रोत में पांच-छः स्थानों पर जल-प्रपात हैं। इस घाटी को मानो शिव ने स्वयं अपने हाथों से कठोर चट्टानों को तोड़-फोड़कर प्रायः दो दर्जन सुन्दर तालाबों का निर्माण किया है। पहाड़ियों पर जंगल के सीधे-सादे प्रकाश-प्रेमी विशालकाय वृक्ष तने हुए खड़े हैं जिनकी हरियाली उस समय भी कम नहीं होती, जबकि छः-छः फुट ऊंची बर्फ की परतें उनके ऊपर जम जाती हैं। वही निस्सन्देह उस वनमाली कृष्ण की दया और प्रेम के सर्वथा योग्य पात्र हैं।

"भगवान् महादेव के बच्चे—कोमल-हृदय पक्षी और हरे कंधों वाले पेड़ ही यहां राम के एक मात्र संगी-साथी हैं।"

o o o

श्री पूरनसिंह जी को वापस लौटना था। जिस दिन वे लौटने वाले थे, स्वामी जी ने उन्हें कहा कि मुझे स्नान करवा दो। श्री पूरन कमण्डल और तौलिया उठाकर उनके पीछे-पीछे झरने के नीचे जा खड़े हुए। पूरन जी ने उन्हें अच्छी तरह मल-मलकर स्नान कराया। स्नान कर वापस कुटिया पर पहुंचे।

पूरनसिंह जी चलने को हुए तो स्वामी राम ने उन्हें विदा करते हुए कहा, "पूरन जी, चाहे जहां जाओ, रहो सदा, इसी स्वर्ण-भूमि में—अपने अन्तर के प्रकाश में और उस कार्य को आगे बढ़ाते रहना, जो राम ने प्रारम्भ किया, है क्योंकि राम अब मौन हो जाएगा।"

वे कुछ दूर तक पूरनसिंह जी को छोड़ने गए। उस समय वे नहाकर

आए ही थे और केवल गमछा लपेटे हुए थे। बाहर हल्की-हल्की बूंदाबांदी हो रही थी और विदाई की इस वेला में पूरनसिंह जी की आंखों से आंसुओं की झड़ी लगी हुई थी। ज्योंही पूरनसिंह जी नमस्कार के लिए झुके त्योंही स्वामी राम एकाएक बड़ी फुर्ती से पीठ फेरकर कुटिया की ओर दौड़ चले। उन्होंने एक बार भी पीछे मुड़कर नहीं देखा।

स्वामी रामतीर्थ जी का स्वास्थ्य ठीक भोजन न मिलने से निरन्तर गिर रहा था। इससे श्री नारायण बहुत चिन्तित थे। उनका पेट भी यहां रहते खराब हो चला था। कभी अपच तो कभी दस्त। श्री नारायण ने स्वामी राम से कहा कि या तो नीचे उतर चलिए जहां औषधि, पथ्य और भोजन की उचित व्यवस्था हो सके या फिर मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं यहां के लिए उचित भोजन की व्यवस्था करूं।

विदा !

अन्त में स्वामी जी ने टिहरी लौट चलने के लिए अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। यह अक्तूबर, १९०६ ई० के दिन थे। टिहरी के महाराज ने उनके आगमन का स्वागत किया और उन्हें अपने सिमलसू वाले चन्द्र-भवन में ठहराया। श्री नारायण नीचे से मजदूर ले गए और स्वामी जी क पुस्तकों को लेकर सप्ताह भर बाद लौट आए।

चन्द्रभवन में उन्हें रहते कोई पन्द्रह दिन हुए थे कि उन्होंने श्री नारायण को गंगा तट पर कोई मनोरम स्थान देखकर झोंपड़ी बनवाने के लिए कहा।

श्री नारायण ने स्वामी राम की कुटिया के लिए एक स्थान निर्धारित किया। यहां पहले कुछ साधुओं का निवास था और उनकी जीर्ण-शीर्ण कुटियाएं भी थीं। टिहरी के महाराज ने उन कुटियाओं को फिर से बनवाकर रहने योग्य बना दिया।

राजमहल छोड़कर वे इस कुटिया में आकर रहने लगे। इस कुटिया

से तीन मील की दूरी पर एक गुफा थी। स्वामी राम इस कुटिया में रह चुके थे। उन्होंने नारायण जी को वहीं रहने का आदेश दिया। जब श्री नारायण वहां के लिए चले तो स्वामी राम नंगे ही पाँव उन्हें छोड़ने कुछ दूर तक गए। उन्होंने श्री नारायणम से कहा, "अब मैं इस स्थान को कभी नहीं छोड़ूंगा। गंगा की गोद को अब मैं कभी नहीं छोड़ूंगा।"

विदाई की वेला में श्री नारायण ने उनके चरणों का स्पर्श किया। स्वामी जी उनके गले मिले। स्वामी राम की आंखों में आंसू छलछला आए और गला रुंध गया। उन्होंने कहा, "मेरे शारीरिक वियोग का दुःख मत मानना। यह शरीर शीघ्र ही निष्क्रिय हो जाएगा। इसकी सेवा का विचार छोड़ दो। अपनी आध्यात्मिक उन्नति की चिन्ता करो। किसी का सहारा मत लो। अपने ऊपर निर्भर बनो। वेदान्त की साकार मूर्ति बन जाओ। आत्मस्थ होकर विश्व में वेदान्त का प्रचार करो।"

अन्तिम शब्दों का आभास देने वाले इन शब्दों को सुनकर श्री नारायण अवाक् रह गए। वे असमंजस में पड़ गये कि इन बातों का क्या अर्थ है! स्वामी जी लम्बी अवधि के लिए समाधिस्थ होने वाले हैं या शरीर को छोड़ने वाले हैं।

पांच दिन बाद श्री नारायण को स्वामी राम का सन्देश मिला कि रविवार को आकर मिलना।

स्वामी राम प्रतिदिन पहले व्यायाम, फिर गंगा में स्नान करते थे। एक दिन एक ऊंची चट्टान से गंगा में छलांग लगाने से उनके पैर में चोट आ गई थी, इसलिए वे अपने रसोइए से गंगाजल मंगवाकर कुटिया में ही स्नान कर लेते थे।

१७ अक्तूबर, १९०६ ई० को दीपावली का पर्व था। आज सोमवार था, इसलिए सोमवती अमावस्या भी थी। यह भी एक पुण्य पर्व था। एक दिन दो-दो पर्वों वाला ऐसा पुण्य दिवस संयोग से ही कभी आता है। ऐसे पुण्य पर्वों पर हिन्दू मात्र तीर्थस्नान की इच्छा रखता है। स्वामी रामतीर्थ यद्यपि स्वयं जंगम तीर्थ थे, तो भी पुण्य तोया गंगा के प्रति उनकी श्रद्धा सर्वविदित थी। आज के पर्व में उन्होंने स्वयं जाकर गंगा में स्नान करने का निश्चय किया। उनका रसोइया भी उनके साथ-साथ चला। तट पर जाकर

उन्होंने स्वयं मालिश की और व्यायाम किया, जैसा कि उनका स्वभाव था। इसके पश्चात् वे छाती-छाती तक पानी में उतरे। यहां धारा का प्रवाह वेगवान् था। रसोइए ने आगे बढ़ने से रोका पर वे नहीं माने। पानी उनकी गर्दन तक आ गया। उन्होंने रसोइये को आश्वस्त करते हुए कहा, "डरो मत, मैं तैरना जानता हूं। उन्होंने उंगलियों से नथनों को दबाकर एक डुबकी लगाई, फिर दूसरी। संभवत: वे जिस पत्थर पर खड़े थे, उससे फिसल गए। वे दुर्बल तो थे ही। पिछले कई दिनों से केवल दूध पीकर रह रहे थे। शरीर का संतुलन नहीं संभाल सके और धारा में बहने लगे। वे पानी के भंवर में फंस गए। रसोइये ने फिर सहायता करनी चाही पर उन्होंने मना कर दिया। स्वामी जी यथाशक्य प्रयत्न करने पर भी भंवर से नहीं निकल सके। अब रसोइया सहायता के लिए चिल्लाया। पर वहां सहायता करने वाला कोई नहीं था। लोग महाराजा के स्वागतार्थ गये हुए थे जो दौरे से लौट रहे थे।

इधर यह अघटनीय घट रहा था, उधर महाराजा के स्वागत में तोप दागी जा रही थी।

स्वामी जी के शरीर को भंवर नीचे दबाता और फिर ऊपर उछाल देता। वे प्रवाह की मुख्य धारा की चपेट में आ गए थे। उनके पेट में पानी चला गया था। सांस उखड़ चली थी। फिर भी उन्होंने कहा, "जाओ, यदि ईश्वरेच्छा यही है तो ऐसे ही जाओ।"

वे दो बार 'ओ३म्' 'ओ३म्' बोले। बस, इतने में उनका शरीर ऐसे तैरने लगा। जैसे वह निष्प्राण हो।

स्वामी जी का शरीर धारा में बहता हुआ उस ओर चला गया जहां पानी ने तट की चट्टानों को काटकर गुफा-सी बना दी थी।

उसी समय इस दुर्घटना की सूचना महाराजा को दी गई। सब ओर शोक का वातावरण छा गया। श्री नारायण को बुलाने के लिए तत्काल आदमी भेजा गया।

आज शनिवार था। आगामी कल को श्री नारायण स्वामी, स्वामी जी से मिलने आने ही वाले थे। महाराजा के भेजे आदमी ने उनसे कहा कि आपको महाराजा बुला रहे हैं।

श्री नारायण ने कारण पूछा तो उसने कहा, "स्वामी जी को गंगा माता वहा ले गईं।"

श्री नारायण इस अप्रत्याशित समाचार को सुनकर जड़वत् हो गए। कुछ क्षणों में संभलकर वे टिहरी को चल दिए।

टिहरी में जाकर उन्होंने रसोइए से पूरा वृत्तान्त सुना।

श्री नारायण वेदान्ती गुरु के वेदान्ती शिष्य थे। संभवतः वे ही स्वामी जी के सर्वाधिक निकट और एक प्रकार से आत्मीय थे।

महाराज ने उनके शरीर को खोजने का प्रयत्न किया पर कुछ पता नहीं चला। एक सप्ताह बाद तटवर्ती कन्दरा के पास जहां उन्हें अन्तिम बार देखा गया था, उनका शरीर पानी के ऊपर तैरता दिखाई दिया।

प्रत्यक्ष-दर्शियों ने बताया कि वे समाधि जैसी स्थिति में पद्मासन में थे। शव को धारा से बाहर निकालकर अन्तिम कृत्य किए गए और अर्थी में रखकर मुख्य गंगा की धारा को अर्पण कर दिया गया।

० ० ०

स्वामीजी के रसोइये भोलादत्त ने उनके अन्तिम दिन का कुछ और विवरण दिया था—

वे प्रातः से ही कुछ लिखने में व्यस्त थे। लिखते समय उनकी आंखों से झरझर आंसू बह रहे थे। भोलादत्त कमरे में जाकर खड़ा रहा पर स्वामी जी को इस बात का पता तक न चला। वह उन्हें याद दिलाना चाहता था कि ११ बज रहे हैं और आपने अभी तक स्नान भी नहीं किया है। भोजन तैयार है और भोजन का समय भी हो रहा है। पर वह बिना कहे ही लौट आया था। बाद में भोलादत्त ने देखा कि स्वामी जी ने आंखें बन्द कर ली हैं। फिर पहले उनके हाथ से पेंसिल और बाद में कागज़ भी गिर पड़ा। कुछ क्षण और प्रतीक्षा करने के बाद उसने धीरे से कहा, "महाराज ! आपका भोजन तैयार है।" उसे भी भूख लग रही थी। जब कोई उत्तर न मिला तो उसने कुछ ऊंचे स्वर में कहा। अबकी बार स्वामी जी ने आंखें खोलीं और पूछा कि "क्या बात है ?"

भोला ने कहा, "महाराज ११ बज गए हैं। आपके स्नान के लिए

पानी लाऊं या आप नीचे भिलिंग[1] गंगा में स्नान करेंगे ?"

स्वामी जी ने उससे पूछा, "क्या तुमने भोजन कर लिया ?"

उसने कहा, "आज दीपावली का पर्व है और मैं स्नान करके ही भोजन करूंगा।"

आज के दिन दो-दो पुण्य पर्व थे। एक तो दीपावली का पर्व था। सोमवार होने के कारण आज की अमावस्या सोमवती अमावस्या थी और आज ही संक्रान्ति भी थी।

स्वामी राम ने आज के पुण्य पर्व में गंगा में स्नान करने का निश्चय किया।

और यह गंगा-स्नान जल-समाधि में परिवर्तित हो गया।

० ० ०

स्वामी राम का देहान्त जिन परिस्थितियों में हुआ और देहान्त से पूर्व के दिनों में उनकी जो मनःस्थिति थी, उन्होंने भक्तिमति सूर्यानन्द (श्रीमती बैलमैन) को, श्री पूरनसिंह जी को और श्री नारायण स्वामी को विदा करते समय जो उद्‌गार प्रकट किये थे और इन्हीं दिनों जो कुछ लिखा था, उससे कुछ लोगों ने यह अनुमान लगाया कि स्वामी जी का देहावसान पूर्व नियोजित था, दुर्घटना उसका कारण नहीं था। पर कुछ विशिष्ट व्यक्ति जो स्वामी राम को अधिक जानते और मानते थे, इस सम्भावना को उचित नहीं मानते। दोनों पक्ष अपने समर्थन में जो युक्तियां और तर्क उपस्थित करते हैं वे इस प्रकार हैं!

अपने अन्तिम लेख में स्वामी जी ने लिखा था:

"ब्रह्मा, विष्णु, शिव इन्द्र, गंगा, भारत!

ओ मौत! **बेशक उड़ा दे इस एक शरीर को;** मेरे और शरीर ही मुझे कुछ कम नहीं। केवल चांद की किरणें, चांदी की तारें पहनकर चैन से काट सकता हूं। पहाड़ी नदी-नालों के भेष में गीत गाता फिरूंगा। मैं ही मनोहर वायु और प्रातःकालीन मन्द समीर की मस्ती हूं। मेरी यह

---

१. गंगा की मुख्य धारा के साथ मिलने वाली प्रायः सभी धाराओं के नामों के साथ गंगा शब्द लगा हुआ है। —लेखक

मनमौजी मूर्ति प्रतिक्षण हलचल में रहती है। इस रूप में मैं पहाड़ों से उतरा, मुर्झाते पौधों को ताजा किया, फूलों को हंसाया, बुलबुल को रुलाया, दरवाजों को खटखटाया, सोते को जगाया, किसी का आंसू पोंछा, किसी का घूंघट उड़ाया। इसको छेड़, उसको छेड़, तुझको छेड़! वह गया! वह गया!! वह गया!!! न कुछ साथ रखा, न किसी के हाथ आया!"

भक्तिमति सूर्यानन्द (बैलमैन) को विदा करते समय उन्होंने कहा था, "सूर्यानन्द! विदा! जाओ! देखो, सूर्य डूब रहा है, **यही तुम्हारा राम है।** इस स्वर्णभूमि को कभी भूलना नहीं। चाहे जहां जाओ, इसे सदा अपने हृदय में अंकित रखो।"

श्री पूरनसिंह को विदा करते समय उनके शब्द थे: "पूरन जी, चाहे जहां जाओ, रहो सदा इसी स्वर्णभूमि में—अपने अन्तर के प्रकाश में और उस कार्य को आगे बढ़ाते रहना, जो राम ने प्रारम्भ किया है, **क्योंकि राम अब मौन हो जाएगा।**"

इसी प्रकार श्री नारायण को विदा करते समय स्वामी राम ने आंखों में आंसू भरकर गद्गद कंठ से कहा था, "**मेरे शारीरिक वियोग का दु:ख मत मानना। यह शरीर शीघ्र ही निष्क्रिय हो जाएगा।** इसकी सेवा का विचार छोड़ दो। अपनी आध्यात्मिक उन्नति की चिन्ता करो। किसी का सहारा मत लो। अपने ऊपर निर्भर बनो। वेदान्त की साकार मूर्ति बन जाओ। आत्मस्थ होकर विश्व में वेदान्त का प्रचार करो।"

उपर्युक्त संदर्भों में काले अक्षरों में मुद्रित वाक्यों से निकलने वाली ध्वनि से कुछ ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यह मृत्यु पूर्वनियोजित थी।

श्री नारायण स्वामी लगभग उपर्युक्त विचार का समर्थन करते हुए लगते हैं। उनके विचार में, "स्वामी राम की काया अत्यन्त क्षीण हो गई थी। उनके विचार में अब यह किसी काम की नहीं रह गई थी। इसलिए उन्होंने इस अनुपयोगी काया को गंगा को समर्पित कर दिया। स्वामी राम आत्मसाक्षात्कारजन्य परमानन्द से पूर्ण थे। इस असीम आनन्द को यह ससीम काया वहन नहीं कर सकती थी और भारस्वरूप बन गई थी। यही कारण है कि उन्होंने मृत्यु को निमंत्रण दिया।"

श्री पूरनसिंह जी उपर्युक्त विचार से असहमति प्रकट करते हुए कहते हैं, "मैंने उस समय सोचा था कि इस सन्दर्भ (अन्तिम लेख से अभिप्राय है) के द्वारा राम ने हमें अपनी ही मृत्यु की पूर्व सूचना दी है। किन्तु कुछ कहा नहीं जा सकता। वे इसी शैली के लेख लिखा करते थे। हां, यह ध्यान देने की बात है कि उन्हें मृत्यु की याद आई, उन्होंने उसके बारे में सोचा और वह आ गई। संभव है कि महासमाधि के विचारों ने ही, जो इधर कुछ दिनों से उन पर छाये रहते थे और जिन्हें हम लोग उनके मन और मस्तिष्क की उदासी और थकावट समझते थे, उनमें उस आत्यन्तिक वैराग्य का भाव पैदा किया हो, जिसे उस समय न मैं और न कोई दूसरा ही खोलकर सांगोपांग देख सकता था। उससे उन्हें लौटाने की बात तो बहुत दूर थी।"

इस प्रसंग में अन्तिम क्षणों के प्रत्यक्षदर्शी स्वामी जी के रसोइये भोलादत्त के वक्तव्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। उसका कहना है, "स्वामी जी ने नदी-प्रवाह की शक्ति के विरुद्ध पूरा संघर्ष किया था।" आत्मघात करने वाले को प्रवाह के विरुद्ध संघर्ष करने की क्या आवश्यकता थी!

उनके लेखों में आत्मघात के पक्ष-विपक्ष में अन्तःसाक्ष्य मिल जाएंगे। एक जगह पर उन्होंने लिखा है, "आत्मघात जीवन की समस्या का समाधान नहीं कर सकता।"

अपने गुरु धन्नामल को लिखे एक पत्र में उन्होंने कोई आठ वर्ष पूर्व लिखा था, "मृतक की अस्थियां गंगा में प्रवाहित की जाती हैं, जीवित शरीर को क्यों नहीं गंगा को समर्पित कर दिया जाता?"

और एक जगह उन्होंने लिखा था, "यदि मृत्यु बिना बुलाए राम के पास आएगी, तो उसकी अपनी ही मृत्यु हो जाएगी।"

जहांतक अन्तःसाक्ष्य का सम्बन्ध है, उसमें परस्पर विरोधाभास दृष्टिगोचर होता है। साधना के जिस अवस्थान पर स्वामी राम पहुंचे हुए थे, उसमें कायाक्लेश कोई महत्त्व नहीं रखता। उनके लिए मृत्यु शब्द अपना महत्त्व खो चुका था। हां, इतना मानने में किसी को कोई आपत्ति नहीं है कि उन्हें अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था। उन जैसे महान्

आत्मा के लिए यह साधारण बात ही थी।

जब उनका शरीर पानी के ऊपर तैरता मिला था तो वह पद्मासन में समाधिस्थ मुद्रा में था, इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि जब नदी-प्रवाह के विरुद्ध संघर्ष सफल नहीं हुआ और उन्हें लगा कि संभवत: ईश्वरेच्छा यही है कि इह लीला का संवरण हो जाए तो उन्होंने ध्यान-समाधि द्वारा प्राण को सहस्रार में स्थापित कर लिया और एकाक्षर ब्रह्म 'ओ३म्'[1] का उच्चारण करते हुए स्वरूप में स्थित हो गए।

□ □ □

१. ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
य: प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥—गीता ८।१३